अक्टूबर-2021
वर्ष-85 । अंक-10 । ₹-19 प्रति । ₹-220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

# अखण्ड ज्योति

गायत्रीतीर्थ शान्तिकुञ्ज
स्वर्ण जयंती वर्ष
1971-2021

5 वर्तमान युग का विशिष्टतम चिंतन - मानवतावाद
15 मंत्र के अर्थ की अनंतता
44 जीवनमूल्यों का संकट
55 जगत् का आधार माँ काली

# अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

## अक्टूबर—1946

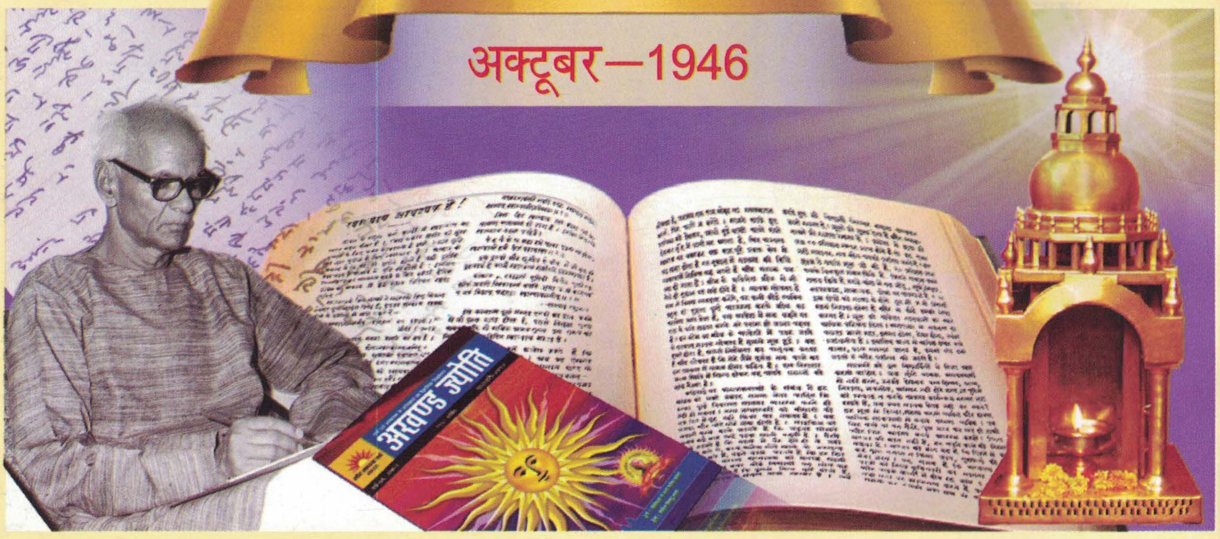


## परोपकार जीवन का सबसे बड़ा लाभ है।

मैंने इतना किया, पर इसके बदले मुझे क्या मिला? ऐसा विचार करने की उतावली न कीजिए। बादलों को देखिए वे सारे संसार पर जल बरसाते फिरते हैं, किसने उनके एहसान का बदला चुका दिया? बड़े-बड़े खंडों का सिंचन करके उनमें हरियाली उपजाने वाली नदियों के परिश्रम की कीमत कौन देता है? हम पृथ्वी की छाती पर जन्म भर लदे रहते हैं और उसे मल-मूत्र से गंदी करते रहते हैं, किसने उसका मुआवजा अदा किया है? वृक्षों से फल, छाया, लकड़ी पाते हैं, पर उन्हें हम क्या कीमत देते हैं?

परोपकार स्वयं ही एक बदला है? त्याग करना अजनबी आदमी को एक घाटे का सौदा प्रतीत होता है, पर जिन्हें उपकार करने का अनुभव है, वे जानते हैं कि ईश्वरीय वरदान की तरह यह दिव्य गुण कितना शांतिदायक है और हृदय को कितना बल प्रदान करता है। उपकारी मनुष्य जानता है कि मेरे कार्यों से कितना लाभ दूसरों को होता है, उससे कई गुना अधिक स्वयं मेरा होता है।

त्याग करना, किसी की कुछ सहायता करना, उधार देने की एक वैधानिक पद्धति है, जो कुछ हम दूसरों को देते हैं, वह हमारी रक्षित पूँजी की तरह परमात्मा के बैंक में जमा हो जाता है। जो अपनी रोटी दूसरों को बाँटकर खाता है, उसको किसी बात की कमी न रहेगी। जो केवल खाना और जमा करना ही जानता है, उस अभागे को क्या मालूम होगा कि त्याग में कितना मिठास छिपा हुआ है।

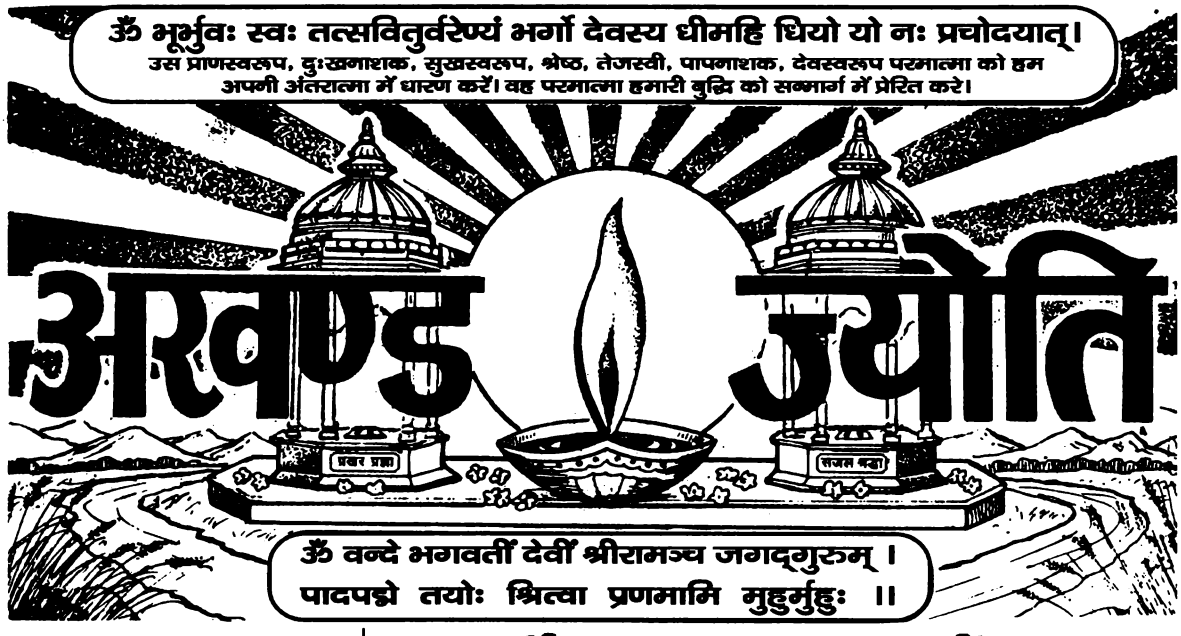


संस्थापक-संरक्षक
**वेदमूर्ति तपोनिष्ठ**
**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**
एवं
**शक्तिस्वरूपा**
**माता भगवती देवी शर्मा**
संपादक
**डॉ० प्रणव पण्ड्या**
कार्यालय
**अखण्ड ज्योति संस्थान**
**घीयामंडी, मथुरा ( 281003 )**
दूरभाष नं० ( 0565 ) 2403940,2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
**कृपया इन मोबाइल नंबरों पर**
**एस. एम. एस. न करें।**
**नया ईमेल-**
**akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org**
**प्रातः 10 से सायं 6 तक**

| | |
|---|---|
| वर्ष | : 85 |
| अंक | : 10 |
| अक्टूबर | : 2021 |
| आश्विन-कार्तिक | : 2078 |
| प्रकाशन तिथि | : 01.09.2021 |

**वार्षिक चंदा**

| | |
|---|---|
| भारत में | : 220/- |
| विदेश में | : 1600/- |

**आजीवन ( बीसवर्षीय )**
**भारत में** : 5000/-

# आराधना

तैराकी का सिद्धांत पढ़ लेने मात्र से किसी को नदी पार करने की ताकत नहीं मिल जाती। साइकिल चलाने के लिए भी किताबें पढ़ लेना मात्र पर्याप्त नहीं होता। तैराकी में निष्णात होने के लिए नदी में उतरना और साइकिल चलाना सीखने के लिए उस पर सवार होना जरूरी हो जाता है। संगीत, कुश्ती, चिकित्सा से लेकर इंजीनियरिंग तक की अनेक विधाएँ ऐसी हैं, जिनके बारे में किताबी ज्ञानमात्र से काम नहीं चलता, बल्कि उनका अभ्यास करना भी जरूरी हो जाता है। अभ्यास किए बिना इन पर पारंगतता अर्जित कर पाना संभव ही नहीं हो पाता।

इसी तरह अध्यात्म का पथ भी तभी सफलता के शिखर को छू पाता है, जब हम किताबी सिद्धांतों से ऊपर उठकर उनको जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं। किताबी सिद्धांत दिशाबोध देने का प्रयत्न करते हैं, पर मंजिल तक पहुँचना हो तो चलने का कष्ट तो उठाना ही पड़ता है। इसी तरह अध्यात्म का सच्चा अर्थ अपने भीतर स्थित देवत्व की संभावना को जाग्रत और जीवंत करना है।

आराधना का, लोकसेवा का, समाजसेवा का पथ वह पथ है, जिस पर चलने से आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान को कार्यरूप में परिवर्तित करने का अवसर मिलता है। यदि प्रत्येक जीव में ईश्वरीय उपस्थिति को मानकर परमार्थपरक कार्यों में स्वयं को निरंतर संलग्न किया जाए तो ही तत्त्वज्ञान को कर्म रूप में विकसित हो पाने का अवसर मिल पाता है। आग निरंतर जलती रहे, इसलिए उसमें ईंधन डालना जरूरी होता है। इसी तरह शास्त्रों का अध्ययन भी जरूरी है, पर वहीं पर हमारे आध्यात्मिक प्रयास की परिणति नहीं हो जाती है। उसे सेवाभाव में उतारने पर आराधना का स्वरूप उभरता है, जो कि समग्र व सच्चा आध्यात्मिक पुरुषार्थ है। ❑

# विषय सूची


- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- आराधना 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  वर्तमान युग का विशिष्टतम चिंतन-मानवतावाद 5
- अनमोल हैं पुस्तकें 7
- सामग्री नहीं, संस्कार हैं भगवान को प्रिय 9
- **पर्व विशेष**
  सांस्कृतिक एकता का प्रतीक
  विजयादशमी पर्व 11
- मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम 13
- मंत्र के अर्थ की अनंतता 15
- अशरीरी आत्माओं से संपर्क 18
- संयम अर्थात साधना का सम्यक पथ 20
- भावों के भूखे हैं भगवान 21
- परमपिता परमेश्वर ही हैं परमानंद के स्रोत 23
- जानलेवा साबित होता वायु प्रदूषण 26
- सच्चा तपस्वी कौन? 28
- ऑक्सीजन देने वाले उपयोगी पौधे 29
- संत नामदेव की भगवद्दृष्टि 31
- भारतीय राजनीति के प्रकाशस्तंभ
  लाल बहादुर शास्त्री 33
- प्रकृति की पाठशाला में विद्यार्जन 35
- प्रायश्चित से करें पापकर्मों का परिमार्जन 37
- **चेतना की शिखर यात्रा—229**
  कुछ अदृश्य पन्ने 39
- जल संकट की भीषण चुनौती 42
- जीवनमूल्यों का संकट 44
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—150**
  हाथों का उपयोग और तदनुरूप व्यक्तित्व 46
- भारतीय दर्शन की मूल अवधारणा 48
- बुढ़ापे की तैयारी 49
- **युगगीता—257**
  जीवन को नरक बना लेते हैं
  आसुरी वृत्ति के लोग 51
- ऐंटीबायोटिक दवाइयों का इतिहास 53
- जगत् का आधार माँ काली 55
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1**
  ज्ञान और पराक्रम का पथ अध्यात्म (पूर्वार्द्ध) 57
- **विश्वविद्यालय परिसर से—196**
  नए कीर्तिमानों को रचता विश्वविद्यालय 63
- **अपनों से अपनी बात**
  लोक-शिक्षण का केंद्र शांतिकुंज 64
- शक्ति-साधना (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68


## आवरण पृष्ठ परिचय

## गतिशील रहने का प्रतीक हिम प्रपात

## अक्टूबर-नवंबर, 2021 के पर्व-त्योहार

| | | |
|---|---|---|
| शनिवार | 02 अक्टूबर | इंदिरा एकादशी/गांधी/शास्त्री जयंती |
| सोमवार | 04 अक्टूबर | परमपूज्य गुरुदेव जयंती |
| बुधवार | 06 अक्टूबर | सर्वपितृ श्राद्ध अमावस्या |
| गुरुवार | 07 अक्टूबर | नवरात्रारंभ |
| सोमवार | 11 अक्टूबर | सूर्य षष्ठी |
| शुक्रवार | 15 अक्टूबर | विजयादशमी/ दशहरा |
| शनिवार | 16 अक्टूबर | पापांकुशा एकादशी |
| बुधवार | 20 अक्टूबर | वाल्मीकि जयंती/पूर्णिमा |
| रविवार | 24 अक्टूबर | करवा चौथ |
| गुरुवार | 28 अक्टूबर | अहोई अष्टमी |
| सोमवार | 01 नवंबर | रमा एकादशी |
| मंगलवार | 02 नवंबर | धनतेरस/धन्वंतरि जयंती |
| बुधवार | 03 नवंबर | रूप चतुर्दशी |
| गुरुवार | 04 नवंबर | दीपावली |
| शुक्रवार | 05 नवंबर | अन्नकूट/ बेसतुबरस |
| शनिवार | 06 नवंबर | भाईदूज |
| बुधवार | 10 नवंबर | सूर्य षष्ठी |
| सोमवार | 15 नवंबर | देव प्रबोधिनी एकादशी |
| शुक्रवार | 19 नवंबर | गुरुनानक जयंती/देव दीपावली |
| मंगलवार | 30 नवंबर | उत्पत्ति एकादशी |

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —***संपादक***

**▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀**

विशिष्ट सामयिक चिंतन

# वर्तमान युग का विशिष्टतम-चिंतन मानवतावाद

वैज्ञानिक चिंतन में एक शब्द का प्रयोग होता है—विकासवाद; जिसे अँगरेजी में 'इवोल्यूशन' कहकर पुकारा जाता है। क्रमिक विकास भी इसी का दूसरा नाम है। क्रमिक विकास का अर्थ है कि हर नया व्यक्ति, हर नई पीढ़ी और हर नई प्रजाति अपने साथ विकास की एक नई और नूतन संभावना को लेकर के आ रही है और विकासवाद के अनुसार यह दौड़ तब तक चलती रहेगी, जब तक हम विकास के अंतिम शिखर तक नहीं पहुँच जाते।

ऐसा नहीं है कि यह सोच गलत है, पर आध्यात्मिक दृष्टि से अधूरी अवश्य है। ऐसा इसलिए; क्योंकि जिस अंतिम शिखर की ओर इशारा विज्ञान कर रहा है, वो उसे भी नहीं पता कि आखिर है क्या? क्योंकि उस पूर्णता के विषय में अपूर्ण व्यक्तियों द्वारा मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है—सुनिश्चितता संभव नहीं! सच पूछा जाए तो पूर्णता की जिस दौड़ को विज्ञान क्रमिक विकास कहता आ रहा है तो क्या उसी ओर उपनिषदों के मंत्र इशारा नहीं करते हैं? ईशावास्योपनिषद् का पहला मंत्र जिस उद्घोष के साथ प्रारंभ होता है, वो उसी परम सत्य की ओर इशारा तो है। उसमें ऋषि कहते हैं—

**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥**

***—ईशा.( 1 )***

अर्थात वह सच्चिदानंदघन, वह परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण ही है, यह जगत् भी पूर्ण है और यह उस पूर्ण परब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है; क्योंकि पूर्ण से पूर्ण को निकाल लेने पर भी मात्र पूर्ण ही शेष रह जाता है।

इस मंत्र का भावार्थ ये ही तो कहता है कि जीवात्मा, परमात्मा का, पूर्णरूपेण परमात्मा का अविच्छिन्न अंग है और आध्यात्मिक दृष्टि से जो क्रमिक विकास है, वो पशु से परमात्मा होने की यात्रा है और उस यात्रा में हम मनुष्य होने के नाते मध्य में खड़े हैं। इसीलिए यदि ध्यान से देखें तो प्रत्येक मनुष्य के मन में एक छटपटाहट-सी है, बेचैनी-सी है—ऐसा लगता है कि हम कुछ ढूँढ़ रहे हैं और ढूँढ़ उसको रहे हैं, जो कभी हमारे पास था और हम उसे भुला बैठे हैं।

जो हम भूले हैं, वह स्वयं का ईश्वर होना भूले हैं, स्वयं का परमात्मा का अंश होना भूले हैं। हममें से अनेक व्यक्ति उसी सत्य को भुला बैठते हैं, वरन ठुकरा भी बैठते हैं और इसीलिए हम अनेक लोगों के जीवन में एक अजीब-सा अधूरापन, एक विचित्र-सी बेचैनी पाते हैं। ऐसा इसलिए; क्योंकि उसे लगता है कि वो कुछ पाना चाहता है, पर उसे प्राप्त नहीं कर पा रहा। इसीलिए तो लगभग हर व्यक्ति के मन में असंतोष का भाव है—उसे सब कुछ पाने के बाद भी ऐसा लगता है कि कुछ नहीं मिला।

आध्यात्मिक दृष्टि से हमारा अनुसंधान स्वयं को प्राप्त करने का, आत्मजगत् का अनुसंधान है। हमारे विकास का अंतिम शिखर, अंतिम पड़ाव परमात्मा है—वही हमारी यात्रा का प्रारंभ भी है और अंत भी। आए भी हम उसी से हैं और जाना भी हमें उसी परम तत्त्व की ओर है—बस, विडंबना यह है कि आत्मविस्मृति के कारण यह भूल ही बैठे हैं कि वो परमात्मा है कैसा? इसीलिए हम कभी किसी के पीछे दौड़ते हैं तो कभी किसी के। इस आशा में कि कभी वो मिल जाए तो जीवन की यह रिक्तता, जीवन का यह खालीपन भरा जा सके।

आध्यात्मिक चिंतन कहता है कि इसी कारण हम कभी धन के पीछे भागते हैं तो कभी पद के, कभी रिश्तों के पीछे भागते हैं तो कभी प्रतिष्ठा में उस सत्, चित्, आनंदस्वरूप परमात्मा को ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं। चूँकि वो स्वरूप भीतर है, बाहर नहीं—इसीलिए यदि ये पद, प्रतिष्ठा, धन और रिश्ते मिल भी जाएँ तो भी असंतोष समाप्त नहीं होता, बल्कि थोड़ा बढ़ ही जाता है। एक कामना पूरी नहीं होती कि नई जन्म ले लेती है। असंतोष, रिक्तता, खालीपन—इसी बेचैनी की दौड़ में संपूर्ण जीवन चला जाता है।

यह जीवन एक उद्देश्यपूर्ण आध्यात्मिक पराकाष्ठा को प्राप्त करने के लिए समर्पित रहे—यह ही आध्यात्मिक मानवतावाद के चिंतन का प्रमुख भाव है। मानव कल्याण

हेतु, मानवीय जीवन की गौरव-गरिमा को प्राप्त करने के उद्देश्य एवं आध्यात्मिक दैवी संभावनाओं का उद्घाटन इसी मनुष्य जीवन में करने के उद्देश्य से ही परमपूज्य गुरुदेव ने इस सदी के सबसे उल्लेखनीय चिंतनों में से एक आध्यात्मिक मानवतावाद के चिंतन को जन्म दिया। परमपूज्य गुरुदेव के दर्शन की मानवतावादी दृष्टि मनुष्य के व्यावहारिक जीवन की सर्वोत्तम अवस्था की कल्पना और इसे प्राप्त करने के प्रयासों की ओर जनसामान्य को एवं अलौकिक ज्ञान के अभीप्सुओं को समान रूप से प्रेरित करती है। यह एक ऐसी विचारधारा है, जिसने मानव जीवन में मानवीय गरिमा और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए अनवरत प्रयत्न किया है।

क्रमिक विकास की शृंखला में मानवीय विकास के लिए अंतिम शिखर को छूने का भाव इसमें समाहित है। वह चिंतन आध्यात्मिक मानवतावाद का ही प्रतिपादक है। भारतीय आर्ष साहित्य में, चाहे वो वेद रहे हों या उपनिषद्—इन सभी में आत्मकल्याण से लेकर विश्वकल्याण का भाव समाहित रहा है, इसीलिए मानवतावादी विचारधारा का प्रमुख आधार समत्व का भाव है। वैदिक दर्शन परमात्मा को परमपिता भी मानता रहा है और भारतीय चिंतन में सदा से ही सभी प्राणियों को एकरूपता के साथ देखने का भाव रहा है। मानवीय कल्याण का भाव रखने वाले इसी लोकोपकारी चिंतन को ही आध्यात्मिक मानवतावाद का नाम प्रदान किया गया। सारांश में कहें तो मानव-कल्याण की वह चिंतनधारा मानवतावाद कहलाएगी, जो मानव को एक आदर्श के रूप में स्थापित करने के अतिरिक्त उसे मानवतावादी गुणों के सर्वाधिक विकास पर बल देती है; क्योंकि उन्हीं गुणों के अभिवर्द्धन से मनुष्य के भीतर परम चेतना का प्राकट्य संभव है।

परमपूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व का आधार ही विश्व मानवता का उत्थान रहा है। उन्होंने विश्व से पलायन करने के स्थान पर ऐसी आध्यात्मिक विचारधारा को संगठन का आधार बनाया, जिसमें व्यक्ति एक सद्गृहस्थ के रूप में अपने लौकिक तथा पारलौकिक, दोनों ही जीवनों के कल्याण के पथ को प्रशस्त कर सकता है। उनके द्वारा प्रदत्त नैतिक, बौद्धिक तथा सामाजिक क्रांतियों के पथ उसी धुरी पर केंद्रित अध्यात्मवादी समाज की स्थापना के पथ हैं। वर्तमान समय में परमपूज्य गुरुदेव के इस चिंतन को एक अत्यंत ही सामयिक और विशिष्ट चिंतन के रूप में समझने की आवश्यकता है। ❑

**परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए उपनिषद्कार ने एक सूत्र दिया है—'तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् अर्थात उसे जानने के लिए जिज्ञासु व्यक्ति गुरु के पास जाए। प्रश्न उठता है कि कैसे ? उत्तर रूप में उसी सूत्र में संकेत आता है—'समित्पाणिः श्रोत्रियं, ब्रह्मनिष्ठम्।' अर्थात गुरु के पास हाथ में समिधा लेकर, शिष्ट भाव से नम्र भाव से जाए।**

**यह कहने के पीछे का भाव है—समिधा अग्नि पकड़ती है। गुरु के पास ज्ञान ज्योति है। साधना समिधा जैसी पात्रता लेकर जाए। कैसे गुरु के पास जाया जाए ? जो 'श्रोत्रिय'—अर्थात ज्ञान से श्रुतियों का ज्ञाता हो, उनका तत्त्व समझता हो और 'ब्रह्मनिष्ठम्' अर्थात आचरण से ब्रह्मनिष्ठ हो। ब्रह्म अनुशासन को समझता भी हो और उसका पालन करने की निष्ठा, क्षमता भी रखता हो। ऐसा संयोग जहाँ बनेगा, परमात्मतत्त्व की प्राप्ति अवश्य होगी।**

# अनमोल हैं पुस्तकें

पुस्तकें मनुष्य की सच्ची मित्र हैं, हितैषी हैं, जिनको पढ़ने से अल्प काल में ही हमारा पीढ़ियों के ज्ञानभंडार से परिचय हो जाता है। यदि इस पर चिंतन-मनन करते हुए इनके सार को हृदयंगम किया जाए तो व्यक्ति के जीवन को बदलते देर नहीं लगती। अच्छी पुस्तकें जीवन को हर स्तर पर प्रकाशित व समृद्ध करती हैं और जीवन को उत्कर्ष, आनंद एवं पूर्णता की राह पर आगे बढ़ाती हैं। स्वयं के द्वारा ज्ञान के अर्जन की एक सीमा है। पुस्तकें इस सीमा का विस्तार करती हैं।

जब हम पुस्तकों को पढ़ते हैं तो देश ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व के श्रेष्ठ विचारकों, महापुरुषों एवं ज्ञानी जनों के जीवन का निचोड़ हमारी पहुँच में होता है। पीढ़ियों का ज्ञान हमें सहज रूप में उपलब्ध होता है। आवश्यकता इस ज्ञान के लिए अपने भीतर एक सच्ची अभीप्सा एवं तीव्र पिपासा जगाने की है तथा इसको ग्रहण एवं धारण करने की है। पुस्तकों का अध्ययन हमें कई स्तर पर समृद्ध करता है। इनको पढ़ने से हमारी बुद्धि के कपाट खुलते हैं व सोचने का दायरा भी विस्तृत होता है।

साथ ही अपने समाज, संस्कृति, इतिहास, भूगोल आदि के साथ दूसरी सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के प्रति समझ विकसित होती है। पूरे विश्व, प्रकृति एवं सृष्टि के प्रति संवेदनशीलता का विकास होता है और सही माने में हम अपने देश, समाज व राष्ट्र के एक अच्छे नागरिक बनते हैं तथा समूचे विश्व को समझने की कुब्बत हममें पैदा होती है। बिना पुस्तकों को पढ़े हम कुएँ के मेंढ़क की तरह अविकसित ही रह जाते हैं और अपने पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों से ग्रस्त एक पिछड़ा एवं संकीर्ण जीवन जी रहे होते हैं।

पुस्तकें हमें इस सीमित दायरे से बाहर निकालती हैं। निस्संदेह इसके लिए देश एवं विश्व भर के श्रेष्ठ साहित्य से परिचय एवं इनका चयन आवश्यक हो जाता है जो कि आज वैश्वीकरण के दौर में कठिन नहीं है। समाज एवं समूह में सार्थक चर्चा इसी आधार पर संभव होती है और हमारी लोक-व्यवहार की क्षमता में वृद्धि होती है।

ज्ञानी जनों की मंडली में हम कुछ सार्थक संवाद करने व योगदान दे पाने की स्थिति में होते हैं। इसके साथ हम समाज के सहज सम्मान के अधिकारी बनते हैं और इन सबके साथ पुस्तकें हमारे आत्मविश्वास को भी बढ़ाती हैं। कठिन समय में अच्छी पुस्तकें हमें सच्चे मित्र की तरह सांत्वना देती हैं, ढाढ़स बँधाती हैं, आगे बढ़ने के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित करती हैं।

व्यक्ति की रुचि व अनुभवों से जुड़ी पुस्तकें जीवन के किसी कठिन पड़ाव पर सटीक समाधान व सही दिशासूचक के रूप में प्राय: निर्णायक भूमिका निभाती देखी जाती हैं। निस्संदेह ये हमारे तनाव को कम करती हैं, अवसाद से उबारती हैं और मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करती हैं। अच्छी पुस्तकें चिकित्सक की भूमिका में हमारा उपचार करती हैं। शारीरिक, मानसिक ही नहीं, बल्कि हमारा आत्मिक स्वास्थ्य भी श्रेष्ठ पुस्तकों के माध्यम से पुष्ट होता है।

जब हम मानवीय चेतना का मर्म उद्घाटित करने वाले साहित्य का पारायण करते हैं तो हम गहनतम स्तर पर स्वयं की संभावनाओं के साथ इसकी व्याधियों से परिचित होते हैं व इनके निदान का प्रयास करते हैं। इसके साथ हमारे समग्र विकास का मार्ग भी प्रशस्त होता है। अध्ययन से हमारी स्मरणशक्ति बढ़ती है। विश्लेषणात्मक-विवेचनात्मक सोचने की क्षमता सशक्त होती है। पढ़ने की आदत से व्यक्ति की एकाग्रता और लक्ष्यकेंद्रित होने की क्षमता में वृद्धि होती है। निश्चित रूप से इससे व्यक्ति का मानसिक एवं बौद्धिक ह्रास रुकता है और मानसिक क्षमताएँ मजबूत होती हैं।

शोध के आधार पर भी स्पष्ट हुआ है कि अच्छी पुस्तकों के अध्ययन से मन-मस्तिष्क युवा, स्वस्थ और नीरोग रहता है। यहाँ तक कि भूलने से जुड़े अल्जाइमर जैसे रोग को दूर रखने में यह सहायक सिद्ध होता है। अध्ययन के साथ हमारा शब्द भंडार भी समृद्ध होता है, जो हमारे लेखकीय कौशल में सहायक रहता है। लिखने के लिए जिन नए विचारों की आवश्यकता होती है, नए शब्दों की आवश्यकता

पड़ती है, पुस्तकों का अध्ययन यह सब सहजता से उपलब्ध करा देता है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि वही अच्छा लेखन कर पाता है, जिसका अध्ययन व्यापक एवं गहन होता है। पुस्तकों का अध्ययन व्यक्ति के आनंद का स्रोत होता है। सोते समय अध्ययन की आदत सुखद व अच्छी नींद को सुनिश्चित करती है। इनके साथ जीवन अधिक संतुलित एवं आनंददायक बनता है और कुल मिलाकर व्यक्ति को दीर्घायुष्य का वरदान प्रदान करता है। यहाँ तक कि सही पुस्तकों का अध्ययन जीवन तक बदल सकता है। कितने सारे व्यक्तियों एवं महापुरुषों का जीवन किसी श्रेष्ठ पुस्तक के कारण रूपांतरित होते देखा गया है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि—**स्वाध्यायान्मा प्रमदः**। अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद न करें। स्वाध्याय द्वारा योग्यता बढ़ाने में आलस्य न करें।

ज्ञानार्जन आजन्म चलने वाली प्रक्रिया है। इसे अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाएँ। उत्तमोत्तम पुस्तकें सदा-सर्वदा पढ़ते रहें। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में—जिस प्रकार प्रभु का नाम जपता हुआ योगी उस परमात्मा के प्रकाश रूप में तल्लीन हो जाता है, उसी प्रकार एकाग्र होकर सद्विचारों के अध्ययन में तल्लीन हो जाने वाला अध्येता अक्षर ब्रह्म की सिद्धि से ज्ञान रूप प्रकाश का अधिकारी बनता है। योग ही नहीं, अध्ययन भी प्रभु का साक्षात्कार करने के उपायों में एक प्रमुख उपाय है।

स्वाध्याय जैसे सरल एवं सरस योग में प्रतिष्ठित होने वाला व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में अपने परम लक्ष्य मोक्ष को पाकर शाश्वत सुख का अधिकारी बनता है। इसलिए नित्य हम कुछ समय श्रेष्ठ पुस्तकों के स्वाध्याय के लिए अवश्य निकालें। यही नया ज्ञान प्राप्त करने का तरीका है। स्वाध्याय से ज्ञान में बढ़ोत्तरी होती है, मन में परिपक्वता आती है, आचरण में पवित्रता आती है तथा आत्मा में प्रकाश आता है। इसके लिए आवश्यक है कि हम हर विषय की श्रेष्ठतम पुस्तकों का चयन करें।

यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे लिए परमपूज्य गुरुदेव का लिखित साहित्य अखण्ड ज्योति से लेकर वाङ्मय एवं युगसाहित्य के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र से लेकर युगनिर्माण के हर पहलू, हर विषय पर प्रकाशपूर्ण समाधान इनमें उपलब्ध है।

हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम स्वयं इनका अध्ययन करें और दूसरों को इनके लिए प्रेरित कर पुण्य के भागीदार बनें। कौन जाने, कब कौन-सा विचार बीज किसी के अंत:करण में क्रांति की चिनगारी सुलगा देगा, जीवन को रूपांतरित कर देगा; क्योंकि कितने सारे परिजनों के जीवन को इस युगसाहित्य के सान्निध्य में बदलते देखा गया है। अत: इन बहुमूल्य पुस्तकों को हमें अपने घनिष्ठ मित्र की तरह देखना चाहिए और इन्हें अपना पथप्रदर्शक मानना चाहिए। ❑

**महर्षि पुलत्स्य के पुत्र एवं प्रसिद्ध ऋषि विश्रवा को एक कुरूप व बेडौल पुत्र उत्पन्न हुआ और उसी रूप को देखकर बालक का नाम कुबेर रखा गया। उसे देखकर सभी घरवाले खिन्न हो गए।**

**बालक कुबेर जब बड़ा हुआ तो उसे अपनी यह उपेक्षा सहन नहीं हुई। उसने अपनी योग्यता बढ़ाने का निश्चय किया। वह कठोर तप द्वारा धनाधीश लोकपाल बनकर अलकापुरी में राज्य करने लगा। जो लोग पहले कुबेर का उपहास करते थे, उन्हें कुबेर के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा।**

**इस पौराणिक आख्यान का यही अर्थ निकलता है कि रूप की अपेक्षा गुणों को महत्त्व दिया जाना चाहिए। अपने पुरुषार्थ से अपनी योग्यता का सतत अभिवर्द्धन करते रहना चाहिए।**

# सामग्री नहीं, संस्कार हैं भगवान को प्रिय

महाभारतकाल के इस ऐतिहासिक अवसर पर आज समूचे विश्व की निगाहें हस्तिनापुर के सशक्त साम्राज्य की ओर लगी थीं। तत्कालीन राजवंशों में विद्यमान महान कुरु-राजवंश आज सर्वसमर्थ था। राज्य में उपस्थित दिग्गज विभूतियों की शृंखला में कुरु-राजवंश का प्रतिनिधित्व करते जहाँ परशुराम के शिष्य गंगापुत्र भीष्म जैसे महापुरुष राज्य की अहर्निश सेवा में समर्पित थे तो वहीं महर्षि पराशर के परम तेजस्वी पुत्र महर्षि व्यास इस राज्य को अपने तपोबल से सींच रहे थे।

महर्षि व्यास के पुत्रों में महाबली धृतराष्ट्र, महारथी पांडु व श्रेष्ठ नीतिज्ञ महात्मा विदुर जैसी विभूतियाँ राज्य के प्रति अपने-अपने उत्तरदायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वहन कर रही थीं। हस्तिनापुर के भविष्य के कर्णधार धृतराष्ट्र एवं पांडु के पुत्रों के शिक्षण का क्रम स्वयं तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ आचार्य कुलगुरु कृप एवं द्रोण द्वारा संपन्न किया गया था, जिनकी आज सारे संसार में ख्याति थी।

एक से बढ़कर एक महायोद्धाओं की शृंखला में पांडुपुत्रों में धर्मराज युधिष्ठिर, महाबली भीम, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन, सुंदर नकुल व बुद्धिमान सहदेव उपस्थित थे तो वहीं धृतराष्ट्र पुत्रों में श्रेष्ठ गदाधारी दुर्योधन, महाबली दुशासन समेत सौ भाई आज हस्तिनापुर के विशाल साम्राज्य की शान थे। संसार का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा था, जिसके विशेषज्ञ इस राज्य के अंग न हों और जो प्रतिभाएँ इससे अनछुई थीं, उन्हें भी इसकी शोभा में सम्मिलित होने की ललक रहा करती थी।

दानवीर कर्ण का ज्वलंत उदाहरण इस बात का साक्षी रहा, जिन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान इस साम्राज्य के अंतर्गत ही प्राप्त की थी। ये सभी विभूतियाँ अपनी उपस्थिति से आज हस्तिनापुर साम्राज्य की न केवल शोभा बढ़ा रही थीं, बल्कि अपने उत्कृष्ट योगदानों से राज्य के चतुर्मुखी विकास में भी संलग्न थीं। इसी का परिणाम था कि आज इस साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार अनंत था एवं भूलोक के लगभग सभी राज्य आज हस्तिनापुर से मैत्री का हाथ बढ़ा रहे थे।

ऐसा करके वे स्वयं को सुरक्षित अनुभव करते थे। हस्तिनापुर का यह सर्वदृष्टि से संपन्न विशिष्ट साम्राज्य आज इस भूलोक पर न केवल पूजनीय था, वरन समस्त विश्व के लिए उदाहरणस्वरूप भी था। एक ही युग में इतनी अधिक संख्या में अवतारों, महात्माओं एवं महारथियों की उपस्थिति तक ही बात सीमित रहती तो वह एक बात होती, किंतु स्वयं नारायण भगवान श्रीकृष्ण के इस धराधाम में अवतरण की घटना किसी अप्रत्याशित ईश्वरीय योजना को दरसा ही रही थी।

यह समय वास्तव में कोई विशेष अवसर लेकर के आया था; जिसमें कि परिवर्तन की वेला व प्रभु के लीला-संदोह के स्पष्ट संकेत मिल रहे थे। सांसारिकता से उत्पन्न राजसिकता से निर्लिप्त रहकर सात्त्विकता को कायम बनाए रख पाना मात्र जनक जैसे विदेह अनासक्त कर्मयोगियों से ही संभव बन पड़ता था। कारण कि जहाँ मन में राजसिकता से निवृत्ति का भाव सात्त्विकता का प्रकाश लेकर के आता है तो वहीं इसकी प्रवृत्ति का दुष्परिणाम तामसिकता के अंधकार को जन्म देता है और पतन को आमंत्रित करता है।

कपटी शकुनि जैसे अराजक तत्त्व भी वहीं अपना असर दिखा पाते हैं, जहाँ उन्हीं की गुण-प्रकृति से मिलते-जुलते कुसंस्कार विद्यमान हों। नरेश धृतराष्ट्र की निजी उच्चाकांक्षाओं का दुर्भाव पुत्र दुर्योधन के माध्यम से सिर चढ़कर बोल रहा था; जिसे छली शकुनि का पर्याप्त मार्गदर्शन प्राप्त था। राज्य के हितैषी इस जड़ से उपजे वृक्ष के फलों का परिणाम भली प्रकार जानते थे। कुरु-राजवंश की अज्ञानजनित विवशता भी राज्य की प्रजा समेत प्रतिष्ठित राज्यों से छिपी न थी।

वे सभी हस्तिनापुर के इस आमंत्रित दुर्भाग्य की हास्यास्पद स्थिति के द्रष्टा बने पतन का तमाशा देख रहे थे। वर्तमान समय के संस्कारों का परिमार्जन यदि इतना ही सहज बन पड़ा होता तो स्वयं नारायण को आज धराधाम में अवतरित होने की आवश्यकता क्यों ही महसूस हुई होती?

आज प्रश्न व्यक्तिगत संस्कारों के परिमार्जन का नहीं, वरन नए सिरे से समाज की स्थापना का था। वर्तमान समय

में समाज में हुई धर्म की क्षति मानवता को अधिक समय तक जीवित नहीं रख सकती थी। धर्म के प्रतिनिधि पांडवों पर अधर्म के प्रतीक बन चुके कौरवों द्वारा राज्य के लोभ में निरंतर किए जा रहे अत्याचार को दीर्घकाल से बिना किसी आपत्ति जताए सहन करते जाना पांडवों की सहनशीलता की पराकाष्ठा थी, किंतु फिर भी पांडवों ने अभी तक युद्ध का मन नहीं बनाया था। भगवान श्रीकृष्ण पांडवों पर अब तक हो चुके अत्याचारों व साथ ही उनकी क्षतिग्रस्त मनोदशा से भली भाँति परिचित थे।

भगवान श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन में धर्म का अवलंबन करते आए पांडवों ने यही निर्णय लिया था कि वे युद्ध के लिए तभी तत्पर होंगे, जब शांति के सभी मार्ग बंद हो जाएँगे। हस्तिनापुर राज्य के निष्पक्ष महामंत्री विदुर ने जब देखा कि धृतराष्ट्र और दुर्योधन अनीति करना नहीं छोड़ते तो सोचा कि इनका सान्निध्य और इनका अन्न मेरी वृत्तियों को भी प्रभावित एवं दूषित करेगा। इसलिए वे नगर के बाहर वन में कुटी बनाकर पत्नी सहित रहने लगे। अतिसामान्य जीवनयापन के क्रम में विदुर जंगल से भाजी तोड़ लेते, उबालकर खा लेते तथा सत्कार्यों में, प्रभुस्मरण में समय लगाते।

शांति के मार्ग से धर्म की स्थापना का अंतिम प्रयास करने स्वयं भगवान श्रीकृष्ण, पांडवों की ओर से उनके शांतिदूत बनकर उनके लिए पाँच गाँव की न्यूनतम आवश्यकता के प्रस्ताव को हस्तिनापुर नरेश के समक्ष रखे जाने के प्रयोजन से हस्तिनापुर पहुँचे, किंतु दुर्योधन के अहंकार के कारण वार्त्ता असफल हो गई। भगवान श्रीकृष्ण द्वारा शांति स्थापना के लिए किए जाने वाले सारे प्रयास असफल हो चुके थे। महाभारत का यह भीषण युद्ध अब निश्चित था।

लोक-व्यवहार में आतिथ्य की शालीनता को भंग करते भगवान श्रीकृष्ण राजकीय सत्कार एवं भोजन आमंत्रण को अस्वीकार करते विदुर के यहाँ जा पहुँचे। वहाँ भोजन करने की इच्छा उन्होंने प्रकट की। विदुर को यह संकोच हुआ कि शाक प्रभु को परोसने पड़ेंगे? विदुर ने जिज्ञासावश भगवान श्रीकृष्ण से पूछा—"आप भूखे भी थे, भोजन का समय भी था और नरेश का आग्रह भी, फिर आपने वहाँ भोजन क्यों नहीं किया?" भगवान श्रीकृष्ण बोले—"काका जिस भोजन को करना आपने उचित नहीं समझा, जो आपके गले न उतरा, वह मुझे भी कैसे रुचता? जिसमें आपने स्वाद पाया, उसमें मुझे स्वाद न मिलेगा, ऐसा आप कैसे सोचते हैं?"

भगवान श्रीकृष्ण के उद्‌गार सुन विदुर भावविह्वल हो गए। प्रभु के स्मरणमात्र से हमें जब पदार्थ, सामग्री नहीं, बल्कि संस्कार प्रिय लगने लगे हैं तो स्वयं प्रभु की भूख; पदार्थों से कैसे बुझ सकती है? उन्हें तो भावना चाहिए। जिसकी विदुर दंपती के पास कहाँ कमी थी। भाजी के सात्त्विक आहार के माध्यम से वही दिव्य आदान-प्रदान चला। दोनों धन्य हो गए। ❑

**विज्ञान जीवित रहेगा; पर उसका नाम भौतिक विज्ञान न होकर अध्यात्म विज्ञान ही हो जाएगा। उस आधार को अपनाते ही वे सभी समस्याएँ सुलझ जाएँगी, जो इन दिनों भयावह दीख पड़ती हैं। उन आवश्यकताओं को प्रकृति ही पूरा करने लगेगी, जिनके अभाव में मनुष्य अतिशय उद्विग्न, आशंकित, आतंकित दीख पड़ता है। न तब युद्ध होंगे, न महामारियाँ फैलेंगी और न जनसंख्या की अभिवृद्धि से वस्तुओं में कमी पड़ने के कारण चिंतित होने की आवश्यकता पड़ेगी। जाग्रत नारी अनावश्यक संतानोत्पादन से स्वयं इनकार कर देगी और अपनी बरबाद होने वाली शक्ति को उन प्रयोजनों के लिए नियोजित करेगी, जो समृद्धि और सद्‌भावना के अभिवर्द्धन के लिए नितांत आवश्यक है।**

***—परमपूज्य गुरुदेव***

पर्व विशेष

# सांस्कृतिक एकता का प्रतीक विजयादशमी पर्व

विजयादशमी सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। यह विजय का महापर्व है, जो अस्तित्व को आनंदातिरेक से सराबोर करता है। विजयपथ पर केवल धर्मपरायण, साहसी ही पाँव रखते हैं—जिनमें जिंदगी की चुनौतियों का सामना कर सकने का साहस है, वे ही इस राह पर चल पाते हैं। विजयादशमी का यह पर्व हमें ये ही स्मरण दिलाता है।

भारत एक विशाल देश है। इसकी भौगोलिक संरचना जितनी विशाल है, उतनी ही विशाल इसकी संस्कृति है। यह भारत की सांस्कृतिक विशेषता ही है कि कोई भी पर्व समस्त भारत में एक जैसी श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाया जाता है, भले ही उसे मनाने की विधि एवं विधान रूपांतरित हो गए हों। ऐसा ही एक पावन पर्व है—दशहरा, जिसे विजयादशमी के नाम से भी जाना जाता है।

दशहरा भारत का एक महत्त्वपूर्ण त्योहार है। विश्व भर में भारतीय इसे हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। यह आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मनाया जाता है। इस दिन भगवान विष्णु के अवतार भगवान राम ने रावण का वध कर असत्य पर सत्य की विजय प्राप्त की थी।

आतंकी एवं आततायी रावण माता सीता का अपहरण करके उन्हें लंका ले गया था। भगवान राम देवी दुर्गा के भक्त थे, उन्होंने युद्ध के दौरान माँ दुर्गा की पूजा की और अंतिम दिन रावण का वध कर माता सीता को मुक्त किया।

इस दिन नया कार्य प्रारंभ करना अति शुभ माना जाता है। यह शक्ति की पूजा का पर्व है। इस दिन देवी दुर्गा की भी पूजा की जाती है। दशहरे के दिन नीलकंठ के दर्शन को बहुत ही शुभ माना जाता है। दशहरा आश्विन नवरात्र के बाद दसवें दिन मनाया जाता है।

देश भर में दशहरे का उत्सव बहुत ही धूम-धाम से मनाया जाता है। इस दिन जगह-जगह मेले लगते हैं। दशहरे से पूर्व रामलीला का आयोजन किया जाता है। इस दौरान नवरात्र भी होते हैं। कहीं-कहीं रामलीला का मंचन होता है तो कहीं जागरण होते हैं। दशहरे के दिन रावण के पुतले का दहन किया जाता है। इस दिन रावण समेत उसके भाई कुंभकर्ण और पुत्र मेघनाद के पुतले जलाए जाते हैं।

अनेक स्थानों पर कलाकार भगवान राम, माता सीता और लक्ष्मण का रूप धारण करते हैं और अग्निबाणों द्वारा इन पुतलों को मारते हैं। पुतलों में पटाखे भरे होते हैं, जिससे वे आग लगते ही जलने लगते हैं। समस्त भारत में विभिन्न प्रदेशों में दशहरे का यह पर्व विभिन्न प्रकार से मनाया जाता है।

कश्मीर में नवरात्र के नौ दिन देवी भगवती को समर्पित रहते हैं। इस दौरान लोग उपवास रखते हैं। एक परंपरा के अनुसार नौ दिनों तक लोग माता भवानी के दर्शन करने के लिए जाते हैं। यह मंदिर एक झील के मध्य स्थित है।

हिमाचल प्रदेश के कुल्लू प्रदेश का दशहरा बहुत प्रसिद्ध है। रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित पहाड़ी लोग अपनी परंपरा के अनुसार अपने ग्रामीण देवता की शोभायात्रा निकालते हैं। इस दौरान वे तुरही, बिगुल, ढोल, नगाड़े आदि वाद्य बजाते हैं तथा नाचते-गाते चलते हैं। शोभायात्रा नगर के विभिन्न भागों से होती हुई मुख्य स्थान तक पहुँचती है, फिर ग्रामीण देवता रघुनाथ की पूजा से दशहरे के उत्सव का शुभारंभ होता है।

इसके अलावा पंजाब तथा हरियाणा में भी विजयादशमी पर नवरात्र की धूम रहती है। लोग उपवास रखते हैं। रात में जागरण होता है। यहाँ भी रावणदहन होता है और मेले लगते हैं। बंगाल, ओडिशा एवं असम में दशहरा दुर्गा पूजा के रूप में मनाया जाता है। बंगाल में पाँच दिवसीय उत्सव मनाया जाता है तो वहीं ओडिशा और असम में यह पर्व चार दिन तक चलता है।

यहाँ भव्य पंडाल तैयार किए जाते हैं तथा उनमें देवी दुर्गा की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं। देवी दुर्गा की पूजा-अर्चना भी यहाँ की जाती है। दशमी के दिन विशेष पूजा का आयोजन किया जाता है। महिलाएँ देवी के माथे

पर सिंदूर चढ़ाती हैं। इसके पश्चात देवी प्रतिमाओं का विसर्जन किया जाता है, जिस यात्रा में असंख्य लोग सम्मिलित होते हैं।

गुजरात में भी दशहरे के उत्सव के दौरान नवरात्र की धूम रहती है। कुँआरी लड़कियाँ इस दिन सिर पर मिट्टी के रंगीन घड़े रखकर नृत्य करती हैं, जिसे गरबा कहा जाता है। पूजा-अर्चना और आरती के बाद डांडिया नृत्य का आयोजन भी किया जाता है।

महाराष्ट्र में भी नवरात्र में नौ दिन माँ दुर्गा की उपासना की जाती है तथा दसवें दिन विद्या की देवी सरस्वती की स्तुति की जाती है। इस दिन बच्चे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए माँ सरस्वती के प्रतीकचिह्नों की पूजा करते हैं।

तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में दशहरे के उत्सव के दौरान माँ लक्ष्मी, देवी सरस्वती और माँ दुर्गा की पूजा की जाती है। पहले दिन धन और समृद्धि की देवी लक्ष्मी का पूजन होता है। दूसरे दिन कला एवं विद्या की देवी सरस्वती की अर्चना की जाती है और अंतिम दिन शक्ति की देवी दुर्गा की उपासना की जाती है।

कर्नाटक के मैसूर का दशहरा भी संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। मैसूर में दशहरे के समय पूरे शहर की गलियों को प्रकाश से सुसज्जित किया जाता है और हाथियों का शृंगार कर पूरे शहर में एक भव्य शोभायात्रा निकाली जाती है।

छत्तीसगढ़ के बस्तर में भी दशहरा बहुत ही सुंदर तरीके से मनाया जाता है। यहाँ इस दिन देवी दंतेश्वरी की आराधना की जाती है। दंतेश्वरी माता बस्तर अंचल के निवासियों की आराध्य देवी हैं, जो दुर्गा का ही रूप हैं। यहाँ यह त्योहार 75 दिन यानी श्रावण मास की अमावस्या से लेकर आश्विन मास की शुक्ल त्रयोदशी तक चलता है।

प्रथम दिन जिसे काछिन गादि कहते हैं, देवी से समारोह आरंभ करने की अनुमति ली जाती है। देवी काँटों की सेज पर विराजमान होती हैं, जिसे काछिन गादि कहा जाता है। यह कन्या स्थानीय परिवार की होती है, जिससे बस्तर के राजपरिवार के व्यक्ति अनुमति लेते हैं। बताया जाता है कि यह समारोह लगभग पंद्रहवीं शताब्दी में आरंभ हुआ था।

काछिन गादि के बाद जोगी-बिठाई होती है, तदुपरांत भीतर रैनी (विजयदशमी) और बाहर रैनी (रथयात्रा) की यात्राएँ निकाली जाती हैं। अंत में मुरिया दरबार का आयोजन किया जाता है। इसका समापन आश्विन शुक्ल त्रयोदशी को ओहाड़ी पर्व से होता है। दशहरे के दिन वनस्पतियों का पूजन किया जाता है। रावण दहन के पश्चात शमी नामक वृक्ष की पत्तियों को स्वर्णपत्तियों के रूप में एकदूसरे को ससम्मान प्रदान कर सुख-समृद्धि की कामना की जाती है।

इसके साथ ही अपराजिता (विष्णुक्रांता) के पुष्प भगवान राम के चरणों में अर्पित किए जाते हैं। नीले रंग के पुष्प वाला यह पौधा भगवान विष्णु को बहुत प्रिय है। दशहरे का केवल धार्मिक महत्त्व ही नहीं, अपितु यह हमारी सांस्कृतिक एकता का भी प्रतीक है।

यह महापर्व अनीति, अत्याचार और आतंक से लोहा लेने की शिक्षा प्रदान करता है। इसी कारण '**यतो धर्मः ततो जयः**' के महासत्य को प्रमाणित करते हुए विजयादशमी पर्व आज धर्मविजय का महापर्व बन गया है। ❑


## अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

| Beneficiary – | Akhand Jyoti Sansthan | I.F.S. Code | Account No. |
|---|---|---|---|
| S.B.I. | Ghiya Mandi Mathura | SBIN0031010 | 51034880021 |
| P.N.B. | Chowki Bagh Bahadur, Mathura | PUNB-0183800 | 1838002102224070 |
| I.O.B. | Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura | IOBA0001441 | 144102000000006 |

**विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।**

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

# मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम

भारत ही नहीं, वरन विश्व इतिहास में हजारों वर्षों से जिन महापुरुषों के चरित्र ने जनमानस के अंतरंग को प्रभावित किया है, उनमें भगवान राम का चरित्र मुख्य है। उनका समय चक्रवर्ती सम्राटों व साम्राज्यों का समय था। तब मनुष्य समाज के दो ही भाग थे—आर्य व अनार्य (सुर व असुर)। जो चरित्रवान व विद्वान नहीं था, वह अनार्य (राक्षस) था। तब सारी मानव जाति की एक ही संस्कृति थी—मानव संस्कृति।

भगवान राम के बारे में अधिकाधिक रूप से जानने का मूलस्रोत महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण है। इस गौरव ग्रंथ के कारण वाल्मीकि दुनिया के आदिकवि माने जाते हैं। श्रीराम कथा केवल वाल्मीकि रामायण तक सीमित नहीं रही, बल्कि महर्षि व्यास द्वारा रचित महाभारत में भी चार स्थलों—रामोपाख्यान, आरण्यकपर्व, द्रोणपर्व ता शांतिपर्व में वर्णित है। बौद्ध परंपरा में भगवान राम संबंधित दशरथ जातक, अनाभक जातक तथा दशरथ कथानक नामक तीन जातक कथाएँ उपलब्ध हैं।

रामायण से थोड़ा भिन्न होते हुए भी वे इतिहास की दृष्टि से स्वर्णिम पृष्ठ हैं। जैन साहित्य में रामकथा संबंधी कई ग्रंथ लिखे गए; जिनमें मुख्य हैं—विमलसुरिकृत पद्मधरित (प्राकृत), रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण (संस्कृत), स्वयंभूकृत पद्मचरित्र (अपभ्रंश), रामचंद्र चरित्रपुराण तथा गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (संस्कृत)। अन्य अनेक भारतीय भाषाओं में भी रामकथा लिखी गई।

हिंदी एवं सहयोगी भाषाओं में कम-से-कम 11, मराठी में 8, बांग्ला में 25, तमिल में 12, तेलुगु में 5 तथा उड़िया में 6 रामायणें मिलती हैं। हिंदी में लिखित गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' ने उत्तर भारत में विशेष स्थान पाया। इसके अतिरिक्त भी संस्कृत, गुजराती, मलयालम, कन्नड़, असमिया, उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं में भी भगवान राम की कथा लिखी गई।

महाकवि कालिदास, भास, भट्टि, प्रवरसेन, क्षेमेंद्र, भवभूति, राजशेखर, कुमारदास, विश्वनाथ, सोमदेव, गुणदत्त, नारद, लोमेश, मैथिलीशरण गुप्त, केशवदास, गुरुगोविंद सिंह, समर्थ गुरु रामदास, संत तुकाडो जी आदि चार सौ से भी अधिक कवियों, संतों ने अलग-अलग भाषाओं में भगवान राम की लीलाकथा तथा रामायण के दूसरे पात्रों के बारे में काव्यों, कविताओं की रचना की है।

विदेश में तिब्बती रामायण, पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानी रामायण, इंडोनेशिया की ककबिन रामायण, जावा की सेरतराम, सैरीराम, रामकैलिंग, पातानी रामकथा, इंडोचायना की रामकेंति (रामकीर्ति), खमैर रामायण, बर्मा (म्यांमार) की दूतों की रामायारान, थाईलैंड की रामकियेन आदि रामचरित का बखूबी बखान करती हैं। इसके अलावा विद्वानों का ऐसा भी मानना है कि ग्रीस के कवि होमर के प्राचीन काव्य 'इलियाड' रोम के कवि नोनस कृति 'डायोनीशिया' तथा रामायण को लिखने की शैली में समानता है।

विश्व साहित्य में इतने विशाल एवं विस्तृत रूप से विभिन्न देशों में विभिन्न कवियों, लेखकों द्वारा भगवान राम के अलावा किसी और चरित्र का इतनी श्रद्धा से वर्णन नहीं किया गया है। देश-विदेश में भगवान राम, लक्ष्मण, सीता-हनुमान आदि के सैकड़ों नहीं, हजारों मंदिरों का निर्माण किया गया। कंबोडिया के विश्वप्रसिद्ध 11वीं शताब्दी में निर्मित अंकोरवाट मंदिर की दीवारों पर रामायण व महाभारत के दृश्य अंकित हैं। इसी तरह 9वीं सदी में निर्मित जावा के परमबनन (परब्रह्म) नामक विशाल शिव मंदिर की भित्तिकाओं पर रामायण की चित्रावली अंकित है।

रामायण से संबंधित सैकड़ों मृण्मूर्तियाँ (टैराकोटा) हरियाणा प्रदेश के सिरसा, हाठ, नचारखेड़ा (हिसार), जींद, सन्थाय (यमुनानगर), उत्तर प्रदेश के कौशांबी (इलाहाबाद), अहिच्छत्र (बरेली), कटिंघर (एटा) तथा राजस्थान के भादरा (श्रीगंगानगर) आदि जगहों से प्राप्त हुई हैं। इन मृण्मूर्तियों पर वनवासकाल की प्रमुख घटनाओं को बहुत सुंदर रूप से दिखाया गया है।

इनमें मुख्य हैं—भगवान राम, माता सीता एवं लक्ष्मण का पंचवटी गमन, मारीच, त्रिशिरा राक्षस द्वारा खर-दूषण से विचार-विमर्श और भगवान राम द्वारा राक्षसों के वध का वर्णन, रावण द्वारा माता सीता का हरण, सुग्रीव आदि द्वारा माता सीता को आभूषण फेंकते देखना, सुग्रीव द्वारा भगवान राम का स्वागत, सुग्रीव-बालि युद्ध, श्रीराम द्वारा बाली वध, बजरंगबली हनुमान द्वारा अशोक वाटिका को नष्ट किया जाना, रावणपुत्र इंद्रजीत का युद्ध में जाना आदि। इन मृण्मूर्तियों पर गुप्तकाल से पूर्व की लिपि में वाल्मीकि रामायण के श्लोक भी लिखे गए हैं।

ये मृण्मूर्तियाँ हरियाणा के गुरुकुल झज्जर के पुरातत्त्व संग्रहालय में देखी जा सकती हैं। इसके अलावा सैकड़ों मृण्मूर्तियाँ भारत के विभिन्न संग्रहालयों तथा लंदन संग्रहालय में संगृहीत हैं। कुषाण सम्राट कनिष्क ने अपनी मुद्रा पर वायुदेवता हनुमान को स्थान दिया था। अकबर ने अपनी एक स्वर्णमुद्रा पर भगवान राम-माता सीता को चित्रित किया था।

मध्य भारत के धार तथा रतलाम राज्य की मुद्राओं पर भी हनुमान अंकित हुआ करते थे। संतों द्वारा प्रचलित पीतल की मुद्राओं पर भगवान राम आदि चारों भाई, सीता तथा हनुमान को दिखाया गया है। इतने विस्तृत साहित्य तथा पुरातात्त्विक प्रमाणों के उपरांत भी यदि कुछ लोग भगवान राम को ऐतिहासिक पुरुष मानने से इनकार करते हैं तो इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है?

प्राचीन भारतीय कालगणना तथा पौराणिक परंपरा के अनुसार श्रीराम 24वें त्रेतायुग में अवतरित हुए। वाल्मीकि रामायण तथा अन्य रामायणों, रामचरित्रों को छोड़कर अन्य प्राचीन ग्रंथों में भगवान राम, लक्ष्मण एवं उनके अवतरण के काल के विषय में चार मुख्य संदर्भ मिलते हैं।

**त्रेता युगे चतुर्विंशे रावणः तपसः क्षयात्।**
**राम दाशरथि प्राप्य सगणः क्षयमीयीवन्॥**
**संधो तु समनुप्राप्ये त्रेतायां द्वापरस्य च।**
**रामो दाशरथिभूत्वा भविष्यामि जगत्पति॥**
**चतुर्विंशें युगे चापि विश्वामित्रपुरः सरः।**
**लोके राम इति ख्यातः तेजसा भाष्करोपमः॥**
**चतुर्विंशे युगे वत्स! त्रेतायां रघुवंशजः।**
**रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातन॥**

उपरोक्त संदर्भों के आधार पर यही सत्य प्रतीत होता है कि भगवान राम, रावण, ऋषि विश्वामित्र 24 वें त्रेतायुग में थे। 4-5 पीढ़ियाँ पूर्व अगर कोई व्यक्ति बिना संतान के मर गया तो उसके सिद्ध करने के लिए हमारे पास शायद कोई प्राकृतिक प्रमाण नहीं मिलता अथवा उसके बारे में कोई जनश्रुति नहीं मिलती तो उसके अस्तित्व को कैसे सिद्ध किया जाए?

आज के समय में देश में अथवा विदेशों में राज्य करने वाले प्रधानमंत्रियों तथा राष्ट्रपतियों के बारे में 1000 वर्षों के बाद में कोई प्रमाण माँगे तो उस समय केवल पुस्तकीय विवरण तथा जनश्रुति ही उनके इतिहास को बता सकते हैं।

नासा (अमेरिका) एजेंसी के जैमिनी—11 आकाशयान (स्पेस क्राफ्ट) द्वारा सन् 2004 में एडम-ब्रिज (रामसेतु) के लिए गए चित्रों के वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर कहा गया था कि भारत तथा श्रीलंका को जोड़ने वाले पुल के ये अवशेष इस ओर इशारा करते हैं कि किसी समय इस रामसेतु का निर्माण पौराणिक आख्यानों के अनुसार ही हुआ होगा।

भगवान राम एक ऐसे इतिहासपुरुष हैं, जिनके उद्भव से वह युग स्वर्णिम आभा से युक्त था। गणना चाहे जो भी हो उनकी कीर्ति, प्रतिष्ठा एवं सम्मान अतुलनीय थे और आज भी भगवान राम जन-जन के हृदय में प्रतिष्ठित मर्यादापुरुषोत्तम हैं। ❑

**अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्।**

*—ऋग्वेद (10/71/5)*

*जो सदाचरण का पालन नहीं करते, उन्हें शिक्षित होने पर भी उसी प्रकार लाभ नहीं मिलता, जैसे जादू की गाय दूध नहीं देती।*

# मंत्र के अर्थ की अनंतता

मंत्र शब्द का अर्थ असीमित है। वैदिक ऋचाओं के प्रत्येक छंद भी मंत्र कहे जाते हैं तथा देवी-देवताओं की स्तुतियों व यज्ञ-हवन में निश्चित किए गए शब्द समूहों को भी मंत्र कहा जाता है। तंत्रशास्त्र में मंत्र का अर्थ भिन्न है। तंत्र शास्त्रानुसार मंत्र उसे कहते हैं, जो शब्द, पद या पद समूह जिस देवता या शक्ति को प्रकट करता है—वह उस देवता या शक्ति का मंत्र कहा जाता है।

मंत्र की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) धर्म, कर्म और मोक्ष की प्राप्ति हेतु प्रेरणा देने वाली शक्ति को मंत्र कहते हैं।

(2) देवता के सूक्ष्मशरीर या इष्टदेव की कृपा की प्राप्ति को मंत्र कहते हैं।

(3) दिव्यशक्तियों की कृपा को प्राप्त करने में उपयोगी शब्दशक्ति को मंत्र कहते हैं।

(4) अदृश्य गुप्तशक्ति को जाग्रत करके अपने अनुकूल बनाने वाली विधा को मंत्र कहते हैं।

(5) इस प्रकार गुप्तशक्ति को विकसित करने वाली विधा को मंत्र कहते हैं।

गायत्री के 24 अक्षरों में ज्ञान-विज्ञान का महान भंडार छिपा हुआ है। उसके एक-एक अक्षर में इतना दार्शनिक तत्त्वज्ञान सन्निहित है, जिसका पूरी तरह पता लगाना कठिन है। आध्यात्मिक और भौतिक सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान उसके गर्भ में मौजूद हैं, जिनका यदि ठीक-ठीक पता चल जाए तो मनुष्य उन सभी वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है, जो उसे अभीष्ट हैं।

गायत्री वेदमाता हैं। गायत्री से ही चारों वेद और उनकी ऋचाएँ निकली हैं। वेद समस्त विद्याओं का भंडार हैं। समस्त तत्त्वज्ञान और भौतिक विज्ञान वेदों के अंतर्गत मौजूद हैं। जो कुछ वेदों में है, उसका सार गायत्री में है। यदि कोई गायत्री को भली प्रकार समझ ले तो उसे वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, उपनिषद् आदि की सभी बातों का ज्ञान स्वयमेव हो सकता है।

एक-एक अक्षर का, एक-एक पद का, क्या अर्थ, भाव, रहस्य एवं संदेश है, उसको जानने के लिए मनुष्य का एक संपूर्ण जीवन भी अपर्याप्त है। गायत्री के 24 अक्षर ज्ञान-विज्ञान के 24 समुद्र हैं, उनका पार पाना साधारण काम नहीं है। यहाँ गायत्री मंत्र के संक्षिप्त भावार्थ पर प्रकाश डाला जाता है। गायत्री महामंत्र है—

**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।**

सबसे पहले 'ॐ' है। ॐकार को ब्रह्म कहा गया है। वह परमात्मा का स्वयंसिद्ध नाम है। योगविद्या के आचार्य समाधि अवस्था में पहुँचकर जब ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं तो उन्हें प्रकृति के उच्च अंतराल में ध्वनि होती हुई परिलक्षित होती है।

जैसे घड़ियाल पर चोट मार देने से वह बहुत देर तक झनझनाती रहती है; इसी प्रकार बार-बार एक ही कंपन उन्हें सुनाई देने लगता है। यह नाद ध्वनि 'ॐ' की ध्वनि से मिलती-जुलती होती है। उसे ही ऋषियों ने ईश्वर का स्वयंसिद्ध नाम बताया है और उसे ही 'शब्द' कहा है।

'ॐ' को प्रणव भी कहते हैं। यह सब मंत्रों का हेतु है; क्योंकि इसी से समस्त शब्द और मंत्र बनते हैं। ॐ के प्रभाव से व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं और व्याहृतियों में से वेदों का आविर्भाव हुआ—

**सर्वेषामेव मन्त्राणां कारणं प्रणवः स्मृतः।**
**तस्मात् व्याहृतियोजातास्ताभ्यो वेदत्रयं तथा॥**
**ओंकार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।**
**कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥**

अर्थात योगीपुरुष अनुस्वारयुक्त ओंकार का सदा ध्यान करते हैं। अतः समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा मोक्षदायक ओंकार को हम नमन करते हैं।

**ॐ इत्येकाक्षरः ध्यानात् विष्णुर्विष्णुत्वमाप्तवान्।**
**ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नः शिवतामभवत् शिवः॥**

ॐ इस ओंकाक्षर मंत्र के ध्यान से विष्णु विष्णुत्व को, ब्रह्मा ब्रह्मत्व को तथा शिव शिवत्व को प्राप्त हुए। गायत्री में ॐकार के पश्चात भूः भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियाँ आती हैं। इन तीनों का त्रिक् अनेकार्थबोधक है।

वे अनेक भावनाओं का और दिशाओं का संकेत करती हैं, अनेकों की ओर ध्यानाकर्षित करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीन उत्पादक, पोषक, संहारक शक्तियों का नाम भूः, भुवः, स्वः है। सत्, रज, तम इन तीनों गुणों को भी त्रिविध गायत्री कहा है। भूः को ब्रह्म, भुवः को प्रकृति और स्वः को जीव भी कहा जाता है।

अग्नि, वायु और सूर्य इन प्रधान देवताओं का प्रतिनिधित्व तीन व्याहृतियाँ करती हैं। तीनों लोकों का भी इनमें संकेत है। सत्, रज, तम इन तीनों गुणों से संसार बना है। इन तीन स्वभावों के प्राणी विश्व में रहते हैं। इन तीनों पर विजय का अर्थ संसार पर विजय। इसी तरह अग्नि, वायु और जल की उपासना का अर्थ है—तेजस्विता, गतिशीलता और शांतिप्रियता का मन में स्थापित होना।

इस पद्धति को अपना कर, इस त्रिविध संपत्ति को अंदर धारण करके जीवन को सर्वांगीण सुख-शांतिमय बनाया जा सकता है।

**'तत्'** कहते हैं 'उस' या 'वह' को। तत् शब्द किसी की ओर संकेत करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। गायत्री में यह परमात्मा की ओर संकेत करता है। परमात्मा का वर्णन-विवेचन नहीं हो सकता, इसलिए इस विषय में केवल संकेत ही किया गया है।

**'सवितु'**—सविता शब्द से साधारणतः सूर्य का अर्थ प्रकट होता है; क्योंकि वह प्रत्यक्षतः तेजस्वी और प्रकाशवान है। परमात्मा की वह अप्रत्यक्ष शक्ति जो तेज के रूप में हमारे स्थूल नेत्रों के सामने आती है, वह सूर्य है।

इसलिए स्थूल अर्थों में इस सूर्य नामक ग्रह को सविता कहते हैं, परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि यह चमकने वाला अग्निपिंड ही पूर्ण सविता नहीं है। आध्यात्मिक भाषा में सविता कहते हैं—तेजस्वी को, प्रकाशवान को, उत्पन्न करने वाले को। परमात्मा की अनंत शक्तियाँ हैं, उनके अनेक रूप हैं, उनमें तेजस्वी शक्तियों को सविता कहा जाता है।

**'वरेण्यं'**—वरेण्य कहते हैं श्रेष्ठ को, वरण करने, ग्रहण करने, धारण करने योग्य को। ईश्वरीय सत्ता में सभी तत्त्व हैं, जो मनुष्य के लिए उपयोगी भी हैं, अनुपयोगी भी। इनमें से गायत्री के द्वारा हम उन तत्त्वों को ग्रहण करते हैं, जो वरेण्य हैं, श्रेष्ठ हैं, ग्रहणयोग्य हैं। धर्म, कर्त्तव्य, अध्यात्म, सत्, चित्, आनंद, सत्य, शिव, सुंदर आदि वरेण्य तत्त्व हैं। गायत्री में वरेण्यं शब्द ऐसे ही तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करने वाला है।

**'भर्गः'**—परमात्मा की वह शक्ति, जो बुराई का, अज्ञानांधकार का नाश करने वाली है, 'भर्ग' कहलाती है। सविता का वह तेज जो रोगों और पापों का शमन करता है, भर्ग कहलाता है। गायत्री में इसी शक्ति का आवाहन-धारण किया जाता है। गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है—**'गायत्र्येव भर्गः तेजो वै गायत्री'** अर्थात गायत्री ही भर्ग है और भर्ग ही गायत्री है।

**'देवस्य'** कहते हैं दिव्य को, अलौकिक को, असाधारण को। देवता दिव्य होते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि जिनकी इच्छा, आकांक्षा, भावनाएँ दिव्य हों—वे देवता हैं। ईश्वरीय शक्ति को देव कहते हैं। शंकरभाष्य में उल्लेख है—

**सर्वद्योतनात्मकाऽखण्डचिदेकरसम्।**

सर्वप्रकाशक, अखंड, चैतन्य, एकरस देव के गुण हैं। शब्द कल्पद्रुम में कहा गया है—जो समस्त प्राणियों को आत्मरूप से प्रकाशित करता है, स्तोत्रों से जिसकी स्तुति की जाती है, जो सर्वत्र व्याप्त है, वह देव है—**सर्वभूतेष्वात्मतया द्योतयते स्तूपतेस्तुत्येङ सर्वत्र गच्छति तस्माद् देवः।**

**'धीमहि'**—धीमहि कहते हैं ध्यान करने को। ध्यान का चमत्कार प्रत्यक्ष है। जिस वस्तु का ध्यान करते हैं, उस पर मन जमता है। उससे रुचि और रुचि से ध्येय की प्राप्ति की आकांक्षा उत्पन्न होती है। इस तरह ध्यान बीज है और सफलता उसका फल है। गायत्री में सविता ध्यान का अर्थ है सविता—प्राप्ति का प्रयत्न। यह बहुत शुभ है।

**'धी'**—धी कहते हैं बुद्धि को। बुद्धि के यों तो कितने ही स्तर और नाम हैं। अक्लमंदी, चतुरता, होशियारी, सूझ-बूझ, दूरदर्शिता आदि बुद्धि विशेष के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। आमतौर पर मानसिक बल को बुद्धि कहते हैं, परंतु यह परिभाषा स्थूल और अधूरी है। जो बुद्धि आत्मकल्याण हेतु सक्रिय रहती है, वही असली 'धी' या 'धियः' तत्त्व है, जिसकी धारणा की प्रेरणा गायत्री मंत्र में की गई है।

**'यः'**—यः का अर्थ है 'जो'; यह परमात्मा के लिए संकेत है। पूर्व में जो सविता वरेण्य, भर्ग, देव, परमात्मा का वर्णन है, उन गुणों वाला जो परमात्मा है, उसे दोहराकर पृष्ठपोषण करने की अपेक्षा यहाँ केवल यः का संकेत कर दिया गया है। यह सविता का रूप है—**यः सविता देवः।** **यत्सत्यज्ञानादि लक्षणम्**—विद्यारण्य स्वा अर्थात **यः** सत्य और ज्ञान का स्वरूप है।

'**नः**' का अर्थ है—हम लोगों का, **नः अस्मदीयाः नः अस्माकम्**। नः बहुवचन के लिए प्रयुक्त होता है। 'मैं' अकेले के लिए और 'हम' बहुतों या सबके लिए होता है। गायत्री में शुभकामना या कल्याण की प्रार्थना सबके लिए करके हृदय की उदारता और विशालता का परिचय दिया गया है। परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि सबको सद्बुद्धि का प्रकाश हो। नः शब्द इसी का द्योतक है।

'**प्रचोदयात्**'—इसका अर्थ है प्रेरणा करना, जोड़ना, बढ़ाना। गायत्री द्वारा उस सविता, वरेण्य, भर्ग का ध्यान करते हैं। इसमें वस्तुओं की नहीं, सद्बुद्धि की प्रार्थना है। परमात्मा से बुद्धि को प्रेरित करने की याचना की गई है। वे हमारी बुद्धि को प्रेरणा दें, जिससे उत्साहित होकर हम अपने अंतःकरण के निर्माण में जुट जाएँ।

गायत्री मंत्र में 'प्रचोदयात्' शब्द बहुत ही मार्मिक है। इसमें आत्मा के गौरव की पूरी तरह रक्षा की गई है। आत्मशक्तियों का भंडार है। उसमें वे सब शक्तियाँ मौजूद हैं, जिनकी सहायता से हम मनचाही स्थितियाँ तथा वस्तुएँ प्राप्त कर सकें। बस, यही इस मंत्र का प्राण है, क्योंकि बुद्धि शुद्ध हुए बिना कुछ भी प्राप्त होता है तो उसका सदुपयोग नहीं होता और जिसका सदुपयोग नहीं, वह व्यर्थ है। जिसकी बुद्धि शुद्ध हो गई, उसकी गायत्री सिद्ध हो गई।

मंत्र-साधना के लिए निम्नलिखित विशेष समय, माह, तिथि एवं नक्षत्र का ध्यान रखना चाहिए।

**1. उत्तम माह**—साधना हेतु कार्तिक, आश्विन, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन एवं श्रावण मास उत्तम होते हैं।

**2. उत्तम तिथि**—मंत्र जप हेतु पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया, सप्तमी, दशमी एवं त्रयोदशी तिथि उत्तम होती हैं।

**3. उत्तम पक्ष**—शुक्ल पक्ष में शुभाचंद्र व शुभ दिन देखकर मंत्र जप करना चाहिए।

**4. उत्तम दिवस**—रविवार, शुक्रवार, बुधवार एवं गुरुवार मंत्र-साधना के लिए उत्तम होते हैं।

**5. उत्तम नक्षत्र**—पुनर्वसु, हस्त, तीनों उत्तरा, श्रावण, रेवती, अनुराधा एवं रोहिणी नक्षत्र मंत्र सिद्धि हेतु उत्तम होते हैं।

## मंत्र-साधना में साधन

**आसन**—मंत्र जप के समय कुशासन, बाघंबर और ऊन से बने आसन उत्तम होते हैं।

**माला**—रुद्राक्ष, जयंतीफल, तुलसी, स्फटिक, हाथी दाँत, लाल मूँगा, चंदन एवं कमल की माला से जप सिद्ध होते हैं। रुद्राक्ष की माला सर्वश्रेष्ठ होती है। बुद्धि सृजन, पोषण, संवर्द्धन और कल्याण की प्रेरणा का गायत्री मंत्र वास्तव में सर्वश्रेष्ठ मंत्र है। इसका नियमित रूप से जप-ध्यान करने से सभी प्रकार के सुख-सौभाग्य की प्राप्ति होने के साथ ही मोक्ष की प्राप्ति भी होती है—ऐसा वेद-शास्त्रों में कहा गया है। साधक इस महामंत्र का जप करें और सुख-सौभाग्य का लाभ उठाएँ। ❑

**पंख कटे तड़पते जटायु को अपनी गोद में लेकर भगवान राम ने उसका अभिषेक अपने आँसुओं से किया। अश्रुपूरित सजल नेत्रों से उसे निहार भगवान राम स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—"तात्! तुम जानते थे कि रावण दुर्द्धर्ष और महाबलवान है, फिर उससे तुमने युद्ध कर अपने प्राण संकट में क्यों डाले ?" अपनी आँखों से अश्रुस्वरूप मोती प्रभु श्रीराम के चरणों में ढुलकाते जटायु ने गर्वोन्नत वाणी से कहा—"प्रभो! मुझे मृत्यु का भय नहीं है, भय तो तब था, जब अन्याय के प्रतिकार की शक्ति नहीं जागती ?" यह सुन भगवान राम ने जटायु को हृदय से लगा लिया और कहा—"तात्! तुम धन्य हो। तुम्हारी जैसी संस्कारवान आत्माओं से संसार को कल्याण का मार्गदर्शन सदैव मिलता रहेगा।"**

# अशरीरी आत्माओं से संपर्क

घटना सन् 1959 की है। सुप्रसिद्ध प्रकृति विज्ञानी फेडरिक जुरगेन्सन स्वीडन के जंगलों में चित्र-विचित्र पक्षियों की चहचहाहट भरी आवाज को रिकॉर्ड कर रहा था। घर आकर जब उस कैसेट को उसने बजाया कि अचानक उसे उसकी दिवंगत माता की आवाज सुनाई देने लगी—फेडरिक! क्या तुम सुन रहे हो? फेडरिक इस आवाज को सुनकर भौंचक्का रह गया। उसने बार-बार कैसेट बजाई। वह उसकी माँ की आवाज थी, जिसको वह कभी भूल नहीं सकता था।

इस आवाज को सुनकर अचानक उसके मन में यह प्रश्न कौंध गया कि क्या दिवंगत अशरीरी आत्माएँ इलेक्ट्रोनिक टेप को प्रभावित कर सकती हैं? उसने सुना था कि आधुनिक तकनीक मनुष्य की समझ एवं ज्ञान के विकास का आधार बनेगी, जिसके फलस्वरूप दिशा एवं काल की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

मार्कोनी के अलावा सोनोग्राफ एवं इलेक्ट्रिक बल्ब के आविष्कारक थॉमस ए. एडिसन भी अज्ञात तत्त्वों से संबंध स्थापित करने का कोई यांत्रिक उपकरण आविष्कृत करने के लिए प्रयासरत थे, जो शॉर्ट वेव और लांग वेव के मध्य की आवृत्ति वाला हो, जो इहलोक और परलोक के निवासियों के बीच संबंध स्थापित करने में सफल हो। इस घटना के बाद जुरगेन्सन ने अपनी टेप की हुई कैसेटों में सैकड़ों विगतात्माओं की आवाज एकत्रित करने में सफलता प्राप्त की।

सामान्यतया वे अशरीरी आत्माएँ एक या दो शब्द ही बोलती हैं। उनके इस सफल प्रयोग के बाद अन्य कई अनुसंधानकर्त्ता परामनोवैज्ञानिकों ने इस संबंध में अथक प्रयास किए, जिनमें सबसे अग्रणी नाम डॉक्टर कोन्स्टेनिन रोडीव का है। उन्होंने एक पुस्तक लिखी है—'इनऑडिबिल बिकम्स ऑडिबिल।' उसमें उन्होंने अशरीरी आत्माओं की 6000 ध्वनियाँ टेप की हैं। सर्वप्रथम यह पुस्तक सन् 1968 में स्वीडिश भाषा में प्रकाशित हुई। बाद में सन् 1969 में यह अँगरेजी में अनुवादित होकर प्रकाशित हुई।

ब्रिटेन और अमेरिका में इस आवाज का उपनाम डॉक्टर रोडीव के नाम पर 'रोडीव वॉइस' रखा गया है। लाट्विया निवासी डॉ. रोडीव स्थायी रूप से स्वीडन में परामनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधानरत रहे हैं। उनका कथन है कि धैर्य के गुणों का विकास कर लेने पर किसी भी व्यक्ति के लिए अशक्य नहीं है कि वह दिवंगत अशरीरी आत्माओं की आवाज को टेप न कर सके।

इस प्रकार की आवाजें सर्वप्रथम फुसफुसाहट जैसी प्रतीत होती हैं। वास्तव में वे अशरीरी आवाजें हुआ करती हैं। अधिक अभ्यास हो जाने पर वे धीरे-धीरे और स्पष्ट समझ में आने लगती हैं। इनका विश्लेषण करने और उनको एंप्लीफाई करने पर वे स्पष्ट हो जाती हैं। डॉ. रोडीव को पूर्ण विश्वास था कि टेप पर रिकॉर्ड की हुई आवाज विगतात्माओं की ही थी, जैसा कि पूर्व की शोधों में स्पष्ट हुआ था। उनके अनुसार इसमें कोई संदेह नहीं है कि हम लोगों ने परलोकवासियों के साथ संदेश का विधान स्थापित कर लिया है।

इन आवाजों में यूरोप की कई भाषाओं का सम्मिश्रण भी पाया जाता था; क्योंकि वे खुद बहुभाषी थे, अत: इन आवाजों में से वे अर्थपूर्ण ध्वनि निकाल लिया करते थे। उदाहरणस्वरूप सर विन्स्टन चर्चिल की एक आवाज रोडीव द्वारा बताई जाती है, जो इस प्रकार सुनी जा सकती है—ते मे क्लु मेज ड्रीम माय डियर येस। इसमें लाट्वियन, स्वीडिश और अँगरेजी के शब्द सम्मिलित हैं।

इन शब्दों का अर्थ डॉ0 रोडीव ने इस प्रकार बताया था—डियर मार्क यू मेक बिलीव, माय डियर थैस अर्थात सुनो, आप मार्क करें, विश्वास रखें। कई विशेषज्ञों ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—तीन महासत्ताओं का ध्यान रखो और शक्तिशाली बनो।

उन्होंने केवल चर्चिल की ही आवाज टेप नहीं की, वरन कई अन्य मूर्द्धन्य व्यक्तियों; जैसे कि—टॉल्स्टॉय, नीत्से, जॉन एफ. केनेडी, हिटलर एवं स्टालिन की आवाजों को भी उस टेपरिकॉर्डर में रिकॉर्ड करने में सफलता प्राप्त की थी।

अनुसंधानकर्त्ताओं के अनुसार कई विगतात्माएँ तो विशेषकर डॉ. रोडीव से ही संबंध स्थापित करना चाहती थीं और टेप में उनके नाम से संबोधन करती सुनी जा सकती थीं। जैसे—कोन्स्टानीन कोस्टी वी आर, प्लीज बिलीव अर्थात कोन्स्टानीन (रोडीव) मृतात्मा-विगतात्मा का अस्तित्व है, कृपया सच मानिए, हम कोस्टी हैं।

डॉ० रोडीव ने फुसफुसाहट जैसी ध्वनियों को अलग करने के लिए एवं उन्हें एंप्लीफाई करने के लिए एक यंत्र का आविष्कार किया, जिसे 'गोनियोमीटर' नाम से संबोधित किया गया है। डॉ० रोडीव के अतिरिक्त यदि कोई अन्य व्यक्ति इन पितर आत्माओं की आवाज रिकॉर्ड करने का प्रयास करता तो वे पहले ही बता देती थीं कि हमें कोस्टी (रोडीव) की ही आवश्यकता है।

जर्मनी के मूर्द्धन्य वैज्ञानिक डॉक्टर हान्सबेन्डर ने फेडरिचरगेन्सन द्वारा टेप की गई मृतात्माओं की आवाज पर गहन अध्ययन-अनुसंधान किया है। उनका निष्कर्ष है कि यह ध्वनियाँ मौलिक हैं, वास्तविक और यथार्थ हैं। इसी संदर्भ में प्रयोग करने वाले एक अन्य ब्रिटिश श्रवणसाधन विशेषज्ञ रेमन्ड कास का भी प्रमुखता से नाम लिया जाता है।

18 जून, 1964 को उन्होंने भी अपनी रिकॉर्ड की हुई कैसेटों में इसी प्रकार की ध्वनियाँ सुनी थीं। उन्होंने इस प्रकार के संदेशों की प्रतिलिपियाँ अन्य शोधकर्त्ताओं को भेजीं, जो इस विषय में अनुसंधान कर रहे थे। इस घटना के ठीक तीन महीने बाद 63 वर्ष की आयु में रोडीव की मत्यु हो गई।

सन् 1935 में ही साइकिक रिसर्च सोसायटी के पूर्व अध्यक्ष सर ओलीवर लॉज ने यह भविष्यकथन किया था कि एक-न-एक दिन विगतात्माओं एवं परलोकनिवासियों के साथ हम बेतार यंत्र के माध्यम से जुड़ जाएँगे।

इससे पूर्व सन् 1930 में विश्वविख्यात माध्यम इलीन गेरट के द्वारा ख्यातिलब्ध उपन्यासकार सर आर्थर कॉनन डायल की विगतात्मा ने बताया था कि जिस प्रकार से नए अनुसंधान कार्य में अनेक वैज्ञानिक पृथ्वी पर कार्यरत हैं, ठीक उसी प्रकार परलोक में भी विगतात्मा वैज्ञानिक पृथ्वी से संदेश व्यवहार बनाने के लिए कार्य में संलग्न हैं। जुरगेन्सन एवं रोडीव जैसे वैज्ञानिकों के प्रयास उस मार्ग की ओर अग्रसर वैज्ञानिक मनीषियों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। ❑

**स्वायंभुव मनु एवं रानी शतरूपा का मन भगवद्गुणों से युक्त संतान को गोद में खिलाने का था। अपनी इस मनोकामना के पूर्ण होने का उपाय वे ढूँढ़ रहे थे। संयोग से उन्हें महर्षि वसिष्ठ का सान्निध्य प्राप्त हुआ।**

**दोनों के मनोभाव को महर्षि वसिष्ठ ने ताड़ लिया और उन्हें इसके पूर्ण होने की युक्ति सुझाते कहने लगे—"तपस्वी आत्माओं की गोद में ही भगवान खेलते हैं। तुम दोनों अपने को तपाकर इस योग्य बनाओ कि परब्रह्म की इच्छा तुम्हारे आँचल में बैठने की होने लगे।"**

**महर्षि वसिष्ठ से निर्देश प्राप्त करने के बाद दोनों ने शुद्ध से विशुद्ध होने की यात्रा आरंभ कर दी और तप-साधना द्वारा स्वयं को सुयोग्य अवस्था में ले आए। सौभाग्य ने उनके द्वार पर दस्तक दी और अपने अगले जन्म में वे दोनों दशरथ-कौशल्या हुए और भगवान राम को अपनी गोद में खिलाने का परम सुख प्राप्त किया।**

# संयम अर्थात साधना का सम्यक पथ

परमपूज्य गुरुदेव ने संयम को साधना का एक महत्त्वपूर्ण सोपान मानते हुए इस पर बहुत बल दिया है और इसके अंतर्गत इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम की बात कही है, लेकिन प्राय: संयम को समझने में अनेकों को भूल हो जाती है। संयम के नाम पर अतिवादी प्रयोग अधिक होते देखे जाते हैं। जहाँ वाणी का मित और सार्थक उपयोग करना था, वहाँ व्यक्ति एकदम मौन धारण कर लेता है और अपने कर्त्तव्यों से विमुख होते देखा जाता है।

इंद्रिय संयम का उद्देश्य जहाँ देहभाव से ऊपर उठते हुए एक स्वस्थ-निरोगी जीवन जीना था तो वहीं व्यक्ति को उपवास के नाम पर एकदम भूखे रहने या फिर अस्वाद व्रत को अतिरेक तक ले जाते देखा जाता है। इंद्रिय संयम के नाम पर एकदम कठोर, शुष्क एवं नीरस जीवन शायद ही किसी आध्यात्मिक साधना का मूल उद्देश्य रहा हो।

ऐसे में साधक एक अवधि विशेष तक संयम के नाम पर हठयौगिक तप करते हुए झूठा संतोष अवश्य पा लेता है कि साधना हो रही है, लेकिन कालावधि समाप्त होने पर फिर वही साधक भोजन-व्यंजन से लेकर विषय-भोगों पर ऐसे टूट पड़ता है कि संयम का मूल प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दिखता। ऐसे में लगता है कि संयम—साधना को समझने में कहीं भारी चूक हो रही है।

वास्तव में संयम—साधना के अतिरेक के बजाय मध्यम मार्ग के अनुसरण का पथ है, जिसमें अपनी यथास्थिति की सम्यक समझ के आधार पर आगे बढ़ा जाता है। इसका मूल उद्देश्य इंद्रिय व मन को क्रमिक रूप से साधते हुए चित्तशुद्धि की प्राप्ति करना रहता है जिससे कि वासना, तृष्णा एवं अहंता जैसे त्रिबंधनों की जकड़न ढीली हो सके। उद्देश्य राग-द्वेष, अहंकार जैसे सूक्ष्म भावों का परिमार्जन करते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, हीनता एवं दर्प-दंभ जैसे आंतरिक रिपुओं पर विजय पाना रहता है।

इसके साथ उद्देश्य ज्ञान के जागरण, भक्ति के उदय एवं विकास के साथ आत्मबोध, आत्मसाक्षात्कार एवं ईश्वरप्राप्ति जैसी अवस्था की ओर बढ़ना व इनमें स्थापित होना रहता है। इस राह में सेवा का महत्तर कार्य भी चित्तशुद्धि एवं आत्मसंतुष्टि के उपकरण के रूप में महत्त्वपूर्ण रहता है।

इस तरह संयम—साधना के नाम पर किसी हठयोग या विवेकहीन तप की प्रक्रिया नहीं है, जिससे कि व्यक्ति का अहंकार पोषित होता हो तथा अज्ञान की ग्रंथियाँ और कसती हों। संयम इनके परिमार्जन-परिष्कार के साथ अपनी इंद्रियों, अर्थ, विचार एवं समय का सम्यक नियोजन एवं संतुलन है।

**अनुशासन मानव समाज की एक आवश्यक इकाई के रूप में हर समय, हर परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।**

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण इसी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करते हुए विषादग्रस्त अर्जुन से कहते हैं—

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**
**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा॥**

*—6/17*

अर्थात संसाररूपी दु:ख का नाश तो उस योग द्वारा सिद्ध होता है, जिसमें आहार-विहार, कर्त्तव्यकर्म, शयन-जागरण के यथायोग्य एवं संतुलित स्वरूप को अपनाया जाता है।

यह प्रकारांतर में संयम-साधना के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन है, जिसके आधार पर जीवन के दु:ख का नाश होता है। इस तरह जीवन की सम्यक समझ के साथ साधा गया संयम ही साधक को अभीष्ट परिणाम की ओर ले जाता है। ❑

# भावों के भूखे हैं भगवान

सामाजिक उत्थान के उद्देश्य को अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से मूर्तरूप देने के लिए प्रतिबद्ध ऋषि मतंग का आश्रम वन के निकट स्थित था। उनके आश्रम में सुदूर प्रदेशों से प्रतिभाओं का समय-समय पर आगमन हुआ करता। आश्रम की ओर आने के दो मार्गों में से एक मार्ग वन से सीधा आश्रम की ओर आता तो दूसरा नदी के उस पार किनारे से होता हुआ आश्रम से जुड़ता।

नदी से होकर गुजरते इस मार्ग की दूरी कुछ अधिक होने के कारण यात्रीगण अक्सर वन से निकले कच्चे रास्ते को ही यात्रा हेतु प्राथमिकता दिया करते थे। कम समय में गंतव्य को पहुँचाने वाला यह कच्चा मार्ग, कंकड़-पत्थरों व काँटेदार झाड़-झंखाड़ों से युक्त सुगम न था। असमय चलती तेज हवाएँ वट-वृक्षों के सूखे पत्तों को उड़ाकर इस मार्ग में पसारती चली जाती थीं। सूखे पत्तों व धूल से ढके रहने के कारण इस मार्ग में बिछे कंटक-काँकड़ यात्रियों को सदैव हानि पहुँचाया करते। मतंग के इस आश्रम के परिक्षेत्र की भौगोलिक दशा सरल जीवनयापन की दृष्टि से अनुकूल न थी।

यह सब कुछ जानते हुए भी मतंग आश्रमवासियों को इन प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य परहितार्थ निरंतर श्रमयुक्त परिष्कृत जीवन जीने की प्रेरणा व प्रशिक्षण दिया करते, जिससे कि विषम परिस्थितियाँ जीवनलक्ष्य की प्राप्ति में कभी बाधक सिद्ध न हों। आयु ढलने के साथ आई शारीरिक शिथिलता मतंग ऋषि के उत्साह के आड़े न आया करती।

जीवन के अंतिम अध्याय में भी वे स्वकृत पुरुषार्थ से आश्रम के तंत्र से लेकर उससे जुड़ी व्यवस्थाओं को प्रत्यक्ष सहभागिता के आधार पर स्वयं सुनिश्चित किया करते। आश्रम की विधि-व्यवस्था को जीवंत व्यक्तित्व के माध्यम से प्रस्तुत कर शिक्षण देने की उनकी अपनी अनूठी शैली थी।

उन्हीं दिनों एक दिन अत्यंत दीन अवस्था में उपेक्षित-विवश शबरी नामक भीलकन्या उनके आश्रम पहुँची। संयोगवश उसे ऋषि मतंग की कृपादृष्टि प्राप्त हुई। उसने आश्रम के निकट ही अपना डेरा डाल लिया। ऋषि मतंग द्वारा किए गए उपकार से अनुगृहीत हो निस्स्वार्थ गुरुसेवा के रूप में मार्ग बुहारने का उसने नित्यक्रम बनाया, जिससे कि गुरु व अन्य यात्रियों को आवागमन में किसी प्रकार की असुविधा न उठानी पड़े।

ग्रीष्म ऋतु थी। भीषण गरमी पड़ रही थी। वन्य प्राणी आकुल-व्याकुल हो वृक्ष-वनस्पतियों की ओट की शीतल छाँह को तलाश व उसकी आड़ में छिपकर स्वयं को सुरक्षित कर रहे थे। भक्तिमती शबरी अभी-अभी मार्ग बुहारकर राह में एक ओर अपनी बुहारनी लिए बैठी थी। अज्ञात प्रतीक्षा की स्थिति में बैठी शबरी की दृष्टि बुहारे गए मार्ग पर पुनः जा पड़ी।

मार्ग को निहारती शबरी की आँखों के समक्ष ऋषि मतंग द्वारा दिए आश्वासन दृश्यमान हो उठे। उनके दर्शन में डूबी शबरी कुछ इस प्रकार आनंदित हो रही थी कि मानो इस क्षण मतंग उसे पुनः याद दिला रहे हों—शबरी! तू शुद्धात्मा होने के साथ ही सौभाग्यशाली भी है। तूने भक्ति के शिखर को छुआ है। भक्ति प्रबल होने पर स्वयं भगवान को भक्त के समक्ष आने के लिए विवश होना पड़ता है। तू देखना कि एक दिन प्रभु श्रीराम स्वयं चलकर तेरे पास आएँगे और तुझे दर्शन देंगे।

कल्पना की उड़ान यहीं तक नहीं थमी, बल्कि गुरुवाक्य पर विश्वास करती व उसे साकार होते हुए वह आगे यह भी देखने लगी जैसे—प्रभु श्रीराम आ ही गए हों और उसे दर्शन देकर सस्नेह उसके चुने फलों का सेवन कर रहे हों। इतना कुछ देखती शबरी ऐसे आनंदलोक में जा विराजती; जहाँ उसे न स्थान की सुध होती, न शरीर इत्यादि की।

प्रेम के आनंद में लीन शबरी अपने गुरु ऋषि मतंग से होती हुई प्रभु श्रीराम में समा जाती। इस तपती दुपहरी का उस पर कोई असर होता न दिख पड़ता। उसके आनंदविभोर मुखमंडल पर विराजित मंद शीतलता तो कभी-कभार उस ओर से गुजरते राहगीरों के लिए आश्चर्य का विषय बन जाती।

इसी अवस्था में किसी अज्ञात लोक में विहार करते कितना समय गुजर जाता, इसकी सुध अब उसे न रहती। गुरुभक्तिनी शबरी का वर्षों से यही क्रम था। वो भोर में ही उठकर गुरु के आश्वासन को याद करती तथा प्रभु श्रीराम के आने की आस में पथ बुहारती, निकट के बगीचे से फल-फूल इत्यादि चुन लाती और साँझ होने तक राह ताकती रहती।

भीलों के कुल में जन्मी शबरी का परिवार एक ऐसे समुदाय के अंतर्गत आता था, जो कि अत्यंत निर्दयता से वन के पशु-पक्षियों के शिकार के लिए कुख्यात था। भोजन की आपूर्ति एवं मनोरंजन, दोनों ही कारणों से उसके परिवार द्वारा प्रतिदिन जीवों की हत्या का जघन्य कृत्य किया जाता, जिसे देख नन्ही शबरी सहम उठती। विरोध का दुस्साहस उससे न बन पड़ता तो मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना करती। सात्त्विक संस्कारों को लिए शबरी अधिक दिनों परिवार की वंशानुगत तामसिकता को न झेल सकी और एक रोज जब परिवार में उसके विवाह हेतु जबरदस्ती की गई तब वह भाग निकली व भटकती हुई ऋषि मतंग के आश्रम जा पहुँची और उनकी कृपा-छाँह व संरक्षण में जीवनयापन करने लगी थी।

दीर्घकालीन प्रतीक्षा के उपरांत आया वह दिन भक्तिमती शबरी के लिए विशिष्ट था। उसके वर्षों का तप फलित होने को था। नित्य की ही भाँति शबरी प्रात: मार्ग बुहारती बीच-बीच में अपनी बूढ़ी आँखों से वन के छोर को देखती। अपनी धुन में रमी वह कुटिया में बैठी थी कि किसी के पदचाप से वह चौंक पड़ी और बाहर निकल आई। भगवान राम वन से निकलते प्रकृति के सौंदर्य को निहारते ठीक उसी मार्ग से शबरी से मिलने पहुँचे।

प्रभु को अपने समक्ष पाकर शबरी भावविह्वल होकर खड़ी रही। हृदय के भाव आँखों से अश्रु बनकर झरने लगे। उसे इस दृश्य पर विश्वास नहीं हो रहा था। अपने गुरु ऋषि मतंग को स्मरण करती अपनी आँखें मलती शबरी बार-बार प्रभु श्रीराम को देखती कि कहीं यह मेरी कोई कल्पना तो नहीं। भगवान राम स्नेह से शबरी के आँसू पोंछते हुए कहने लगे—"शबरी! हम अभी भूखे हैं। क्या तुम हमें कुछ खिलाओगी नहीं?"

शबरी को अब पूर्णत: विश्वास हो गया कि यह सब यथार्थ सत्य है। वह अपने प्रभु से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी व अगले ही पल भागी-भागी अपनी कुटिया से फल ले आई। भगवान राम के साथ आए भ्राता लक्ष्मण को कुटिया के आँगन में उसने बिठाया व सेवा हेतु तत्पर हुई।

भगवान राम आस-पास के क्षेत्र को आश्चर्य से देखने लगे। वहाँ लगे सारे फूल खिले हुए थे, एक भी कुम्हलाया नहीं था। प्रत्येक से मधुर व भीनी-भीनी सुगंध निकल रही थी। जिज्ञासावश उन्होंने शबरी से इसका कारण पूछा तो वह बोली—"भगवन्! इसके पीछे एक घटना है। यहाँ बहुत समय पूर्व मतंग ऋषि का आश्रम था। बहुत से ऋषि-मुनि और विद्यार्थी रहा करते थे।

"एक बार चातुर्मास्य के समय आश्रम में ईंधन समाप्तप्राय था। वर्षा प्रारंभ होने के पूर्व ईंधन लाना आवश्यक था, किंतु आलस्यवश विद्यार्थी लकड़ी लाने नहीं जा रहे थे। एक दिन स्वयं वृद्ध मतंग अपने कंधे पर कुल्हाड़ी रखकर लकड़ियाँ काटने चल दिए। गुरु को जाते देख विद्यार्थी भी उनके पीछे जाने लगे।

"लकड़ियाँ काटते-काटते आचार्य के शरीर से स्वेद-बिंदु निकलने लगे। विद्यार्थी भी पसीने से तर-बतर हो गए। तब जहाँ-जहाँ वे श्रम-बिंदु गिरे थे, वहाँ-वहाँ सुंदर फूल खिल उठे, जो बढ़ते-बढ़ते आज सारे वन में फैल गए हैं। यह उनका पुण्य प्रभाव ही है कि वे ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। कुम्हला भी नहीं रहे हैं।"

यह कुछ सुन भगवान श्रीराम अपने स्थान से उठे व आश्रम की दिशा की ओर मुड़कर अभिवादन की मुद्रा में खड़े होकर लक्ष्मण को संबोधित करते कहने लगे—"भाई! श्रमजीवी के शरीर से निकलने वाला पसीना ही संसार का पोषण करता है और जीवन जीने की अनुकूल स्थिति पैदा करता है। इसीलिए ऋषि मतंग के इस पुरुषार्थ को प्रणाम करो।"

शबरी का कल्याण करके, उससे विदा लेकर भगवान राम उसके निवासस्थल से कुछ दूर ही चले थे कि अनुज लक्ष्मण ने शबरी के अतिथि सत्कार पर प्रश्न किया—"भैया! अतिथि सत्कार का यह ढंग तो कदापि उचित न था। आपने उस वृद्धा के हाथ से उसके जूठे फल क्यों ग्रहण किए?" भगवान मुस्कराए और कहने लगे—"लक्ष्मण! वे फल नहीं, शबरी के अनन्य भाव थे, जो उसकी भक्ति से वर्षों से सिंचित होकर श्रद्धा की मिठास में पक चुके थे। अब तुम ही बताओ, मैं उनकी कैसे उपेक्षा कर सकता था?" भगवान के लीला प्रसंग ने यह सिद्ध कर दिया था कि वे वस्तुओं के नहीं, बल्कि भावों के भूखे होते हैं। ❑

# परमपिता परमेश्वर ही हैं परमानंद के स्त्रोत

हमारे चारों तरफ कोलाहल-ही-कोलाहल है। हमारे बाहर भी कोलाहल है और हमारे भीतर भी। उसी कोलाहल में मनुष्य बेतहाशा भागता फिर रहा है। कभी वह बाहर से आ रहे कोलाहल को सुनकर उस ओर दौड़ पड़ता है तो कभी अपने अंदर से उठ रहे कोलाहल को सुनकर बेचैन हो उठता है। कभी बाह्य जगत की चमक-दमक उसे लुभाती है तो कभी मन में उठ रहीं कुत्सित कल्पनाएँ व कामनाएँ उसे लुभाती हैं परिणामस्वरूप चित्त उद्विग्न और अशांत बना रहता है।

वह करे तो क्या करे? वह बेचैन, व्याकुल, व्यथित और विचलित हुआ जाता है। उसे वहाँ से निकलकर भागने की कोई युक्ति भी नहीं सूझ पड़ती। फिर वह जाए तो जाए कहाँ? वह उनसे मुक्त हो भी तो कैसे? पर यह कोलाहल है ही क्यों और किसलिए? यह दौड़-धूप, यह भौतिकता की अंधी दौड़ है ही क्यों? यह व्यर्थ की थोथी हलचल किसलिए?

यह बवंडर किसलिए, जो हमें झंझावात में फँसी हुई मक्खियों के दल की भाँति उड़ाए ले जा रहा है? कभी इधर तो कभी उधर और हम कठपुतलियों की तरह बस नाचते फिर रहे हैं। आखिर क्यों और किसलिए? अवश्य ही सुख की चाह में, सुख की खोज में, पर क्या इससे कभी किसी को सुख मिल सका है? क्या इससे कभी कोई सुखी भी हो सकेगा? क्या इससे कभी किसी के मन में शांति आ सकी है? क्या इससे किसी में आंतरिक उल्लास आ सका है?

क्या इससे कभी किसी को आत्मिक आनंद मिल सकता है? नहीं। बिलकुल नहीं। तो फिर हम सुख की खोज में, सुख की चाह में, आनंद की चाह में विषय-भोगों के पीछे भाग ही क्यों रहे हैं? और आखिर कब तक भागते फिरेंगे? हम संसार के शोर-शराबे, अपने कर्म-संस्कारों के शोर-शराबे व कोलाहल के पीछे कब तक भागते फिरेंगे? जाहिर है कि प्रश्न उठता है कि हम इनके पीछे कठपुतलियों की भाँति नाचते फिरना भला कब बंद करेंगे?

यह देवदुर्लभ मानव जीवन के साथ खेल-खिलवाड़ करना नहीं तो क्या है? यह शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्ति का अपव्यय व बरबादी नहीं तो क्या है? यह बालक्रीड़ा-कौतुक नहीं तो और क्या है? बच्चे खेल-खेल में मिट्टी के ढेर से सारे व्यंजन बनाते हैं और फिर पंक्ति में बैठकर उन व्यंजनों को एकदूसरे को परोसते हैं।

वे उसे खाने का अभिनय करते हैं और उसे खाकर तृप्त होने का भी अच्छा अभिनय करते हैं। पर उससे क्या? उनकी न तो भूख मिटती है न ही प्यास। इसलिए उन्हें अगले ही पल भूख लगती है और वे भूख मिटाने को दौड़ते हुए अपनी माताओं के पास पहुँचते हैं, माताएँ अपने बच्चों को स्वादिष्ट व्यंजन खिलाती हैं, जिन्हें खाकर बच्चे वास्तव में तृप्त हो जाते हैं। फिर माताएँ बच्चों को लोरी सुनाती हैं और खेल से थके-हारे बच्चे शीघ्र ही अपनी माता के आँचल तले निर्भीक, निर्भय हो मीठी निद्रा में चले जाते हैं।

अस्तु हम सुख पाने, आनंद पाने के लिए जो विषयों के पीछे भागते फिर रहे हैं, उसमें यह बालक्रीड़ा—कौतुक मात्र है। ये व्यर्थ के कार्य हैं, जिनसे कभी शाश्वत सुख मिलना नहीं है, आनंद मिलना नहीं है। यह ठीक है कि भौतिक जीवन में रहते हुए भौतिक साधनों की आवश्यकता है तो उन्हें पूरा करना भी है, पर उतना ही, जितना कि बच्चों को खेलने के लिए खेल आवश्यक हो जाता है। फिर इससे ज्यादा तो खेल नहीं, बल्कि जीवन के साथ ही खिलवाड़ करने जैसा होगा; क्योंकि हमें शाश्वत सुख, भौतिक साधनों से नहीं, बल्कि शाश्वत सुख के वास्तविक स्त्रोत, आनंद के वास्तविक स्त्रोत सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमपिता परमेश्वर से ही प्राप्त हो सकता है।

परमात्मा के आँचल में, परमात्मा की गोद में, परमात्मा की शरण में ही हम निर्भय व निर्भीक हो सकते हैं और परमसुख की, परमानंद की अनुभूति कर सकते हैं।

वे परमात्मा हमसे दूर नहीं, बल्कि हमारे ही पास हैं। वे तो आत्मा के रूप में हमारे अंदर ही विराज रहे हैं। शरीर तो उस आत्मा का आवरण मात्र है, वस्त्र मात्र है। इंद्रिय सुख

क्षणिक है, क्षणभंगुर है, यह हमेशा अतृप्त और अधूरा ही रहता है, पर हमारे जीवन का सारा प्रयोजन अब तक शरीर को सजाने-सँवारने, मन को, बुद्धि को संतुष्ट करने पर ही केंद्रित रहा है।

हम या तो मन और बुद्धि के इशारे पर नाचते रहे हैं या फिर संसार की भेड़चाल में चलते रहे हैं। इसलिए अपने भीतर आत्मा के रूप में विराजमान परमात्मा की उपस्थिति का हमें कभी आभास तक नहीं हो सका। प्रश्न उठता है कि हम अपनी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति करें कैसे? हम कैसे अपनी आत्मा में परमात्मा को प्रकट करें? योग-अध्यात्म का सारा उपक्रम ही अपनी आत्मा में परमात्मा को अनुभव करने पर केंद्रित है।

ज्ञान-कर्म, जप-तप, भक्ति-ध्यान आदि अपनी ही आत्मा में परमात्मा को प्रकट करने व उनकी अनुभूति पाने के विविध साधन हैं। जैसे समुद्र में उतरकर ही समुद्र की लहरों से खेला जा सकता है, उन लहरों को अनुभव किया जा सकता है, समुद्र की गहराई को अनुभव किया जा सकता है, वैसे ही परमात्मा के ध्यान में उतरकर, डूबकर ही परमात्मा की अनुभूति की जा सकती है। इधर-उधर भागते-फिरते रहने के बजाय हमें स्वयं के भीतर ही उतरना होगा। अमूल्य जीवन का पल-पल बीता जा रहा है। पता नहीं, कब शरीर छूट जाए?

यही समय है शांति से बैठकर अपने आप में समाहित होने का, अपने आप को एकाग्र करने का, अपने हृदय में स्थित आत्मा में उतरकर परमात्मा का दर्शन पाने का। यही समय है उस आंतरिक द्वार को खोलने का, उस स्रोत तक पहुँचने का, जहाँ से आत्मज्ञान की अमृत गंगा प्रस्फुटित होने को, प्रकट होने को और हमारे भीतर प्रवाहित होने की प्रतीक्षा में रुकी पड़ी है। यही समय है उस ब्रह्मसागर में उतरकर उस सागर में उठ रही आनंद की लहरों से खेलने का और स्वयं को आनंदित करने का।

गंगा की बहती हुई शीतल व पावस रसधार, जलधार में उतरकर ही, भीगकर ही हम उसकी शीतलता की अनुभूति कर सकते हैं। हिमाच्छादित हिमालय के बीच बैठकर ही तो हम हिमालय के स्वर्गीय सौंदर्य व शीतलता को अपने भीतर उतार सकते हैं और उस सौंदर्य सुख की अनुभूति कर सकते हैं। प्रदीप्त अग्नि से उठती हुई लपटों की ऊष्मा को हम उसके पास जाकर, बैठकर ही तो महसूस कर सकते हैं।

वैसे ही बारंबार परमात्मा का चिंतन करने से, परमात्मा की उपासना करने से, परमात्मा का ध्यान करने से हमारी आत्मा में ही सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, प्रेमस्वरूप, परमानंदस्वरूप परमात्मा की अनुभूति स्वयमेव होने लगती है। हमें परमात्मा का स्पर्श ध्यान में, उपासना में ही प्राप्त हो सकता है। साधक को अपनी आत्मा में ही परमात्मा के स्पर्श की अनुभूति होती है। उस संस्पर्श से, उस स्पर्श से साधक को जो परमानंद की अनुभूति होती है, वह वास्तव में अवर्णनीय है, अकल्पनीय है।

परमात्मा के संस्पर्श से मिलने वाले परमानंद के विषय में युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं—आत्मा-परमात्मा के मिलन संयोग को ही परमानंद कहा गया है। विषयों से मिलने वाले आनंद से मनुष्य कभी अघाता नहीं, कभी भी उसे तृप्ति मिलती नहीं व उसकी शक्ति सदैव नष्ट होती रहती है, किंतु इस योगजन्य आनंद से उसकी शक्ति बढ़ती चली जाती है एवं आनंद की परमावस्था को प्राप्त हो वह तृप्ति, तुष्टि और शांति पाता है।

इस आनंद की प्राप्ति तभी संभव है, जब मन की वृत्तियाँ, चित्त की वृत्तियाँ, चंचलता पूर्णत: समाप्त और शांत हो गई हों और ऐसा उसी के साथ घट पाना संभव है, जिसने ब्रह्म का चिंतन करते-करते स्वयं को ब्रह्ममय बना लिया हो अर्थात वह ब्रह्म के स्वरूप को ही प्राप्त हो गया हो। श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—"जिसने ब्रह्मरस, अमृतरस की एक बूँद का स्वाद चख लिया, उसे रंभा और तिलोत्तमा भी चिता की भस्म के समान प्रतीत होती हैं।"

वास्तव में ब्रह्मरस के समान कोई रस नहीं। इस रस के समक्ष अन्य सभी रस फीके हैं। जिसने एक बार भी यह रस चख लिया, वास्तव में वह विषयरस में कभी आसक्त हो ही नहीं सकता। सांसारिक रसों व विषयसुख के प्रति हमारी आसक्ति अब तक इसलिए बनी हुई है; क्योंकि अब तक हमारी आत्मा ने ब्रह्मरस चखा ही नहीं। अब तक हमने ब्रह्मरस चखा ही नहीं है। इस संबंध में एक बड़ी रोचक कथा आती है—

"श्रीरंगम में प्रत्येक वर्ष एक मेला लगता था। उसमें श्री रामानुजाचार्य भी अपने शिष्यों के साथ जाते थे। एक दुर्दांत डाकू जिसका नाम दुर्दम था, वह भी उस मेले में आता था, पर उसका उद्देश्य श्रीरंगम की छवि का दर्शन करना नहीं, बल्कि कुछ अलग हुआ करता

था। वह एक महिला के प्रति बहुत आसक्त था। वह वहाँ उसी के लिए जाता था। वह महिला एक वेश्या थी, पर थी बहुत ही सुंदर। वह डाकू उस सुंदरी के पीछे छाता लगाकर चलता।

''मेले में आए भक्त जनों का ध्यान तो श्रीरंगम की मधुर-मनोहर छवि की ओर रहता, पर उसका ध्यान उस सुंदर युवती में लगा रहता, पर उसके आतंक के कारण कोई भी उसकी इस हरकत को लेकर कुछ कह पाने का साहस नहीं कर पाता था। जब आचार्य रामानुज को यह सब पता चला तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—'उसे मेरे पास बुलाओ।' आचार्य की आध्यात्मिक शक्ति के विषय में उसने भी काफी कुछ सुन रखा था। अत: वह भयभीत था कि कहीं वे शाप न दे दें। न चाहते हुए भी वह उनके शिष्यों के कहने पर आचार्य जी के पास पहुँचा।

''आचार्य जी उससे बोले—'हमें बड़ा अचरज है कि सभी भगवान में सौंदर्य का दर्शन कर रहे हैं और तुम एक स्त्री में आसक्त हो।' यह सुनकर वह बोला—'यह सुंदरतम स्त्री है, जिसमें मेरी आसक्ति है। मैं उसे चाहता भी हूँ।' तब आचार्य रामानुज बोले—'हम इससे भी सुंदर कुछ दिखा दें तो क्या तुम इसे छोड़ दोगे?' इतना कहकर वे उसे श्रीरंगम की छवि के दर्शन को ले गए। मूर्ति में श्रीरंगम के रूप में भगवान श्रीकृष्ण की अपूर्व सुंदर झलक देखकर वह भावविह्वल हो गया। आचार्य जी की प्रार्थना पर भगवान ने उसे अपने अप्रतिम सौंदर्य की एक झलक दिखाई।

''अपूर्व सौंदर्य को देखकर वह दस्यु भावविह्वल होकर आचार्य रामानुज के चरणों में गिर पड़ा और बोला—'महात्मन्! अब तो मुझे इन्हीं भगवान को प्राप्त करना है।' इस पर आचार्य जी बोले—'यदि तुम निर्दिष्ट तप, साधना व ध्यान करोगे तो ही यह रूप (भगवान का अपूर्व सौंदर्य) तुम्हारे मन में, तुम्हारी आत्मा में टिकेगा व तुम्हें सतत दिखता रहेगा।' वह डाकू तप, साधना, ध्यान करने को सहर्ष तैयार हुआ। तप, साधना, ध्यान करते-करते उसकी जीवन-दृष्टि बदलने लगी। उसकी चित्तशुद्धि होने लगी। उसके हृदय में, आत्मा में भगवान की मनोहर छवि स्थिर होने लगी।

''ध्यान में वह उस मनोहर छवि का दर्शन करने लगा। जब आचार्य जी ने देखा कि अब विषयरस में उसकी आसक्ति नहीं रही तो एक दिन उन्होंने दुर्दम को उसी स्त्री से विवाह करने का निर्देश दिया। उसने सारा जीवन सद्गृहस्थ के रूप में जिया। वह लोकसेवी के रूप में जीवन जीने लगा। प्रतिदिन आचार्य जी कावेरी में स्नान करने जाते और वहाँ से लौटते हुए दुर्दम के कंधे पर हाथ रखकर आते।

''यह देख सभी आश्चर्य करते कि एक डाकू को साथ लेकर आचार्य जी क्यों आते-जाते हैं? इस पर आचार्य बोले—'अब दुर्दम दस्यु नहीं रहा। अब वह बदल गया है। तुम उसका हृदय देखो, अब उसमें भगवान बसते हैं।' वास्तव में परमात्मा के दिव्य सौंदर्य का दर्शन मनुष्य में कितना बड़ा परिवर्तन ला सकता है। सचमुच इस दर्शन से पाने वाले आनंद को ही दिव्यानंद कहा गया है, परमानंद कहा गया है, ब्रह्मानंद कहा गया है।''

यदि चाहें तो हम भी नित्य जप, तप, ध्यान, सेवा, स्वाध्याय के माध्यम से भगवान के दिव्यस्वरूप का दर्शन कर परमानंद की अनुभूति कर सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता (6.28) में स्वयं कहा है—

**युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।**
**सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥**

अर्थात अपने मन को सदा आत्मा के साथ युक्त करके (आत्मा को परमात्मा में लगाकर) वह पापरहित योगी आसानी से (सहज ही) परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूपी अनंत आनंद की अनुभूति करता है।

यहाँ भगवान हमें यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि बारंबार ब्रह्म का चिंतन, ध्यान करने पर ही, जीव का ब्रह्म से मिलन होने पर ही, जीवात्मा का परमात्मा से मिलन होने पर ही जीव को, जीवात्मा को ब्रह्म संस्पर्श की अनुभूति होती है। यही सबसे बड़ा सुख है। यदि हम इंद्रिय सुख को सबसे बड़ा सुख मानते हैं तो इसका अर्थ यह है कि हमारी जीवात्मा को अब तक परमात्मा का संस्पर्श प्राप्त नहीं हो पाया है; क्योंकि जीवात्मा परमात्मा से विमुख हो गई है, बिछड़ गई है।

इस विमुखता, बिछड़ेपन व वियोग के दूर होते ही हमें प्रभु का संयोग प्राप्त होगा, सान्निध्य प्राप्त होगा, संस्पर्श प्राप्त होगा और संस्पर्श पाते ही ब्रह्मानंद भी प्राप्त होगा; क्योंकि परमपिता परमेश्वर ही हैं परमानंद के स्रोत। उनसे जुड़ना ही इस जीवन का ध्येय है। ❑

# जानलेवा साबित होता वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण अत्यंत सांघातिक है। इससे सामान्य जीवन बुरी तरह से प्रभावित होता है। देश के महानगरों में आज प्रदूषण का स्तर काफी बढ़ चुका है। देश की राजधानी के गैस चैंबर बनने में 43 प्रतिशत जिम्मेदारी धूल-मिट्टी और हवा में उड़ते मध्यम आकार के धूलकणों की ही है।

यहाँ की हवा को खराब करने में गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ की 17 प्रतिशत और पैटकॉन जैसे पेट्रो-ईंधन की 16 प्रतिशत भागीदारी है। इसके अलावा भी कई कारण हैं; जैसे कूड़ा जलाना इत्यादि।

बढ़ते प्रदूषण को नियंत्रण करने के लिए ये सभी प्रयास नाकारा सिद्ध हो रहे हैं। एक अनुमान है कि हर साल अकेले पंजाब-हरियाणा के खेतों में कुल 3 करोड़, 50 लाख टन पराली जलाई जाती है। पराली जलाने पर सल्फर-डाइऑक्साइड, ठोस कण, कार्बन-मोनोऑक्साइड, कार्बन-डाइऑक्साइड और राख निकलती है। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि जब कई करोड़ टन फसल अवशेष जलते हैं तो वायुमंडल की कितनी दुर्गति होती होगी?

हानिकारक गैसों एवं सूक्ष्मकणों से परेशान दिल्ली वालों के फेफड़ों को कुछ महीने हरियाली से उपजे प्रदूषण से भी जूझना पड़ता है। विडंबना है कि पराग कण से श्वास की बीमारी पर चर्चा कम ही होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार पराग कणों की ताकत उनके प्रोटीन और ग्लाइकॉल प्रोटीन में निहित होती है, जो मनुष्य के बलगम के साथ मिलकर अधिक जहरीले हो जाते हैं।

ये प्रोटीन जैसे ही हमारे खून में मिलते हैं तो ये एक विशेष तरह की एलर्जी को जन्म देते हैं। यह एलर्जी इनसान को गंभीर श्वास की बीमारी की तरफ ले जाती है। चूँकि गरमी में ओजोन परत और मध्यम आकार के धूल कणों का प्रकोप ज्यादा होता है, इसलिए पराग कणों के शिकार लोगों के फेफड़े बहुत शीघ्र ही क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए ठंढ शुरू होते ही दमा के मरीजों का दम फूलने लगता है।

यह तो सभी जानते हैं कि मिट्टी के कण लोगों के लिए श्वास लेने में बाधक बनते हैं। मानकों के अनुसार हवा में पर्टीकुलेट मैटर यानी पीएम की मात्रा 100 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर होनी चाहिए, लेकिन अभी ये खतरनाक पार्टिकल 240 के करीब पहुँच गए हैं। इसका एक बड़ा कारण विकास के नाम पर हो रहे वे अनियोजित निर्माण कार्य हैं, जिनसे असीमित धूल उड़ रही है। पीएम ज्यादा होने का परिणाम इन रूपों में सामने आता है—आँखों में जलन, फेफड़े खराब होना, अस्थमा, कैंसर और दिल के रोग होना इत्यादि।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् अर्थात सीएसआइआर और केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान द्वारा हाल में दिल्ली की सड़कों पर किए गए एक सर्वे से पता चला है कि सड़कों पर लगातार जाम लगने और इस कारण बड़ी संख्या में वाहनों के रेंगते रहने से गाड़ियाँ डेढ़ गुना ज्यादा ईंधन खपत कर रही हैं। अत: उतना ही अधिक जहरीला धुआँ यहाँ की हवा में शामिल हो रहा है। बीते मानसून के दौरान पर्याप्त बरसात होने के बावजूद दिल्ली के लोग बारीक कणों से परेशान हैं तो इसका मूल कारण विकास की वे तमाम गतिविधियाँ हैं, जो अनिवार्य सुरक्षा नियमों के बगैर ही संचालित हो रही हैं।

इन दिनों राजधानी के परिवेश में इतना जहर घुल रहा है, जितना दो साल में कुल मिलाकर नहीं होता। बीते 17 सालों में दिल्ली में हवा के सबसे बुरे हालात हैं। आज भी हर घंटे एक दिल्लीवासी वायु प्रदूषण का शिकार होकर अपनी जान गँवा रहा है। गत 5 वर्षों के दौरान दिल्ली के सबसे बड़े सरकारी अस्पताल एम्स में श्वास के रोगियों की संख्या 300 गुना बढ़ गई है।

एक अंतरराष्ट्रीय शोध रिपोर्ट में यह आशंका जताई गई है कि अगर प्रदूषण के स्तर को नियंत्रित नहीं किया गया तो सन् 2025 तक दिल्ली में हर साल करीब 32,000 लोग जहरीली हवा के शिकार होकर असामयिक मौत के मुँह में समा जाएँगे। सनद रहे कि आँकड़ों के अनुसार वायु प्रदूषण के कारण दिल्ली में हर घंटे एक व्यक्ति की मौत होती है। यह भी जानना जरूरी है कि एक स्वच्छ पर्यावरण

का मानक अधिकतम 60 एक्यूआइ यानी एयर क्वालिटी इंडेक्स होना चाहिए, लेकिन दिल्ली में यह आँकड़ा एक समय 999 तक पहुँच गया था।

देश के अन्य शहरों में भी यह सामान्य स्तर से अधिक रहता है। वाहनों के धुएँ में बड़ी मात्रा में हाइड्रोकार्बन होते हैं और तापमान 40 डिगरी सेल्सियस के पार होते ही ये हवा में मिलकर दूषित तत्त्वों का निर्माण करने लगते हैं। ये तत्त्व इनसान के लिए जानलेवा हैं। इस खतरे का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वायु प्रदूषण करीब 25 फीसद फेफड़ों के कैंसर की वजह बना हुआ है। इस खतरे पर काबू पा लेने से हर साल करीब 10 लाख लोगों की जिंदगियाँ बचाई जा सकती हैं।

दिल्ली और देश के दूसरे शहरों में वायु प्रदूषण को और खतरनाक स्तर पर ले जाने वाले पैटकॉन पर रोक के लिए कोई ठोस कदम न उठाना भी हालात को खराब कर रहा है। जब पेट्रो पदार्थों को रिफाइनरी में परिशोधित किया जाता है तो सबसे अंतिम उत्पाद होता है—पैटकॉन। इसका दहन करने से कार्बन का सबसे ज्यादा उत्सर्जन होता है।

चूँकि इसके दाम डीजल, पेट्रोल या पीएनजी से बहुत कम होते हैं, अत: अधिकांश बड़े कारखाने अपनी भट्ठियों में इसे ही इस्तेमाल करते हैं। अनुमान है कि जितना जहर लाखों वाहनों से हवा में मिलता है, उससे दुगना पैटकॉन इस्तेमाल करने वाले कारखाने उगल देते हैं।

दिल्ली जैसे शहरों में वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए निर्माणस्थलों पर धूल नियंत्रण, सड़कों पर जाम लगने से रोकने के साथ-साथ पानी का छिड़काव होना भी जरूरी है। इसके अलावा ज्यादा-से-ज्यादा सार्वजनिक वाहनों के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इसके लिए सबसे जरूरी पहलू हैं—सार्वजनिक परिवहन ढाँचे को दुरुस्त बनाना, ताकि लोगों को अधिकतम सहूलियत मिल सके और वे स्वयं इसे अपनाने पर जोर दें।

इस पर भी विचार किया जाना समय की माँग है कि सार्वजनिक स्थानों पर किस तरह के पेड़ लगाए जाएँ, ताकि पर्यावरण सुरक्षित एवं संरक्षित रहे। वायु प्रदूषण की रोक-थाम जनजाग्रति-अभियान से ही संभव है। हम सभी को सचेत एवं सजग रहना चाहिए। हरीतिमा-संवर्द्धन ही इसका एक सम्यक समाधान है। ❑

**बौद्ध भिक्षु विनायक को वाचालता की लत पड़ गई। जोर-जोर से चिल्लाकर जनपथ पर वह लोगों को जमा कर लेता और धर्म की लंबी-चौड़ी बातें करता। यह समाचार तथागत तक भी पहुँचा। शिक्षण की यथार्थ शैली से अवगत कराने के लिए उन्होंने विनायक को अपने पास बुलवाया और स्नेह भरे शब्दों में पूछने लगे—"भिक्षु! यदि कोई ग्वाला सड़क पर निकलने वाली गायें गिनता रहे तो क्या वह उनका मालिक बन जाएगा?" विनायक ने सहज भाव से तथागत द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर दिया—"नहीं भंते! ऐसा कैसे हो सकता है?" अपनी बात आगे बढ़ाते हुए वह कहने लगा—"भगवन्! गौओं के स्वामी ग्वाले को तो उनकी सँभाल और सेवा में सदैव ही लगे रहना पड़ता है।" अपनी स्वयं की बात पर ध्यान देने का पर्याप्त अवसर विनायक को देते तथागत कुछ क्षण रुके व अंतत: उसकी सोई चेतना को जगाकर विनायक से गंभीर स्वरों में कहा—"तो तात! धर्म को जिह्वा से नहीं, जीवन से व्यक्त करो और जनता की सेवा-साधना में संलग्न रहकर उसे प्रेमी बनाओ।" विनायक को अपनी भूल का एहसास हुआ और वह सच्चे अर्थों में लोकसेवा में जुट गया।**

# सच्चा तपस्वी कौन?

एक व्यक्ति बहुत गरीब था। वह अपने परिवार का पालन-पोषण बहुत ही मुश्किल से कर पाता था। कड़ी मेहनत और पुरुषार्थ के बल पर उसने धीरे-धीरे काफी संपत्ति अर्जित कर ली और वह अपने गाँव का सबसे अमीर व्यक्ति भी बन गया। इस सबके बावजूद उसके मन में अमीर होने का तनिक भी अभिमान नहीं था। उसके पास ढेर सारे नौकर-चाकर थे। एक लड़का था, जो अब बड़ा हो चुका था। उस व्यक्ति ने अपने घर की सारी जिम्मेदारी अपने पुत्र को सौंप दी और स्वयं अपना समय भगवद्भजन में बिताने लगा। वह व्यक्ति अपने मकान से कुछ दूर जंगल में एक कुटिया बनाकर तप करने लगा और बीच-बीच में घर जाकर अपने पुत्र का मार्गदर्शन भी किया करता।

एक दिन देवर्षि नारद उस जंगल से होकर गुजर रहे थे कि तभी उनकी नजर उस व्यक्ति पर पड़ी और वे वहीं रुक गए। दोनों में परस्पर संवाद आरंभ हुआ। उस व्यक्ति ने अपनी आध्यात्मिक अभिरुचि के अलावा अपने घर-परिवार, धन-वैभव के विषय में भी देवर्षि को विस्तार से बताया। इस व्यक्ति की तपस्या में कितनी गहराई है, यह इस वन में रहकर तपस्वी होने का कहीं स्वांग तो नहीं रच रहा है? यह जानने हेतु देवर्षि ने उस व्यक्ति की परीक्षा लेनी चाही। प्रथम भेंट में वे उस व्यक्ति का कुशलक्षेम जानकर ही वहाँ से चले गए। कुछ दिनों बाद देवर्षि फिर उससे मिलने जा पहुँचे। उन्होंने देखा कि वह व्यक्ति ध्यान में डूबा हुआ है।

कुछ देर की प्रतीक्षा के उपरांत जब वह व्यक्ति ध्यान से बाहर आया तो उसे देवर्षि ने चेताया कि आपके मकान में भयंकर आग लग गई है और कुछ ही क्षणों में आपका सारा धन-वैभव जलकर राख हो जाएगा। देवर्षि की इस सूचना को सुनकर भी वह व्यक्ति मंद-मंद मुस्कराता रहा व समत्व भाव से स्थिर रहा। उसके मुखमंडल पर विषाद का कोई भाव नहीं आया। देवर्षि से वह विनम्रतापूर्वक कहने लगा—''वह धन-वैभव मेरा नहीं है। सब कुछ प्रभु का ही दिया हुआ है। जो भी हो प्रभु की इच्छा। प्रभु जो भी करते हैं, अच्छा ही करते हैं। वैसे भी घर पर कई लोग हैं, जो धन-वैभव को बचाने के लिए पर्याप्त हैं। मैं उसकी चिंता क्यों करूँ?''

देवर्षि उसकी बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और वहाँ से चले गए। कुछ दिनों के पश्चात वे पुनः उस व्यक्ति को देखने आए। चिरपरिचित स्थान पर जाकर उन्होंने देखा कि वह तपस्वी उस कुटिया में नहीं है। देवर्षि को पुनः से उस व्यक्ति की साधना की प्रामाणिकता पर संदेह हुआ अस्तु उसे खोजते हुए वे उसके गाँव पहुँच गए। उन दिनों उस क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ा था। सभी प्राणियों का भूख से बुरा हाल था। उस गाँव में पहुँचते ही देवर्षि ने देखा कि उस तपस्वी के घर पर भूखे, नंगे, दीन-दुखियों का जमघट लगा हुआ है।

भीड़ को चीरते हुए वे आगे पहुँचे तो उन्होंने पाया कि यह तो वही व्यक्ति है, जो अपनी तपस्या छोड़कर यहाँ लोगों को अपने हाथों से राशन-पानी, धन-सामग्री आदि बाँटने में लगा है। उन्होंने यह भी देखा कि वहाँ से कोई भी खाली हाथ नहीं जा रहा है। सभी मुस्कराते, प्रसन्न होते हुए जा रहे हैं। देवर्षि उस व्यक्ति के सेवाभाव से अति प्रसन्न हुए और बोले—''वत्स! तुम्हारी तपस्या हर दृष्टि से उत्तम है। तुमने वास्तव में अध्यात्म को सही अर्थों में अपनाया है। वह तपस्या भी क्या, जिसमें मानव मात्र के कल्याण की भावना न हो।''

अपनी बात आगे बढ़ाते हुए नारद कहने लगे—''वत्स! संसार में धनवान होना बुरी बात नहीं है। इससे तो बहुत से शुभ कार्य हो सकते हैं। इससे लोगों का कल्याण व उपकार हो सकता है। बुराई तो धन के अभिमान में डूब जाने और उससे मोह करने में है। तुममें न तो धन-वैभव का अभिमान है और न ही अपनी तपस्या का अभिमान है। तुम वास्तव में सच्चे अध्यात्मवादी हो। तुम्हारे जैसे के लिए वन और राजमहल, दोनों एक समान ही हैं। उस तपस्वी ने देवर्षि का बड़ा आदर-सत्कार किया। देवर्षि ने अपना आशीर्वाद देकर उससे विदा ली। ❑

# ऑक्सीजन देने वाले उपयोगी पौधे

कोरोनाकाल ने जीवन को कई मायनों में पुनर्परिभाषित कर दिया है, जिसमें प्रकृति का सम्मान, इसका पोषण और इसके सान्निध्य की आवश्यकता गहराई से अनुभव हुई है। कोरोना की दूसरी लहर में ऑक्सीजन की कमी एक अहम मुद्दा बनी, जिसमें ऑक्सीजन के अभाव में कितने सारे लोग असमय काल-कवलित हुए। ज्ञात हो कि पृथ्वी पर पेड़-पौधे ऑक्सीजन के सबसे बड़े स्रोत हैं और इनकी प्रचुरता स्वस्थ वातावरण का निर्माण करती है।

पेड़-पौधों की पत्तियों से ऑक्सीजन तैयार होती है; जहाँ प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के अंतर्गत कार्बन-डाइऑक्साइड का उपयोग होता है और ऑक्सीजन का विसर्जन। एक पेड़ प्रतिदिन औसतन 2721 किलोग्राम और वर्ष भर में 993165 किलोग्राम ऑक्सीजन का उत्पादन करता है; जबकि एक व्यक्ति औसतन प्रतिदिन 0.84 किलोग्राम ऑक्सीजन ग्रहण करता है। यह भी ज्ञात हो कि सामान्यतया पेड़ दिन में ऑक्सीजन एवं रात को कार्बन-डाइऑक्साइड छोड़ते हैं, जिस कारण मान्यता रही है कि रात को पेड़ों के नीचे नहीं सोना चाहिए कारण कि इन पर भूत-प्रेत रहते हैं।

वास्तव में रात को कार्बन-डाइऑक्साइड निस्सृत होने के कारण व्यक्ति घुटन से लेकर चक्कर अनुभव कर सकता है तथा नींद में दु:स्वप्न का शिकार हो सकता है। जो भी हो स्वस्थ पर्यावरण के लिए वृक्षों का रोपण महत्त्वपूर्ण है और जब बात ऑक्सीजन के अतिरिक्त उत्पादन की हो तो कुछ विशेष पेड़-पौधों की चर्चा आवश्यक हो जाती है, जो दिन-रात ऑक्सीजन छोड़ते हैं, जिनका घर के अंदर एवं बाहर रोपण किया जा सकता है। प्रस्तुत है कुछ ऐसे ही उपयोगी वृक्षों का संक्षिप्त विवरण, जिनके रोपण को घर के अंदर एवं आस-पास प्रोत्साहित किया जा सकता है।

ऑक्सीजन उत्सर्जन के संबंध में समुद्री पौधे सबसे प्रमुख हैं। समुद्र का हिस्सा दो-तिहाई होने से यह सबसे अधिक 70 से 80 प्रतिशत ऑक्सीजन उत्पादन करता है। धरती पर उगने वाले पौधों में बाँस बहुत तेजी से बढ़ने वाला पेड़ है, जो अन्य पेड़ों की तुलना में 30% अधिक ऑक्सीजन निस्सृत करता है। माना जाता है कि बाँस का पेड़ प्रतिवर्ष 80 टन कार्बन-डाइऑक्साइड अवशोषित करता है और 70 टन से अधिक ऑक्सीजन का उत्पादन करता है। यह प्राकृतिक रूप से विषम परिस्थितियों में भी तीव्रता से पनपता है और इसे किसी खाद व कीटनाशक की आवश्यकता नहीं होती। अपनी विशेषताओं के कारण यह हवा को ताजा रखता है।

पीपल भी भारत का एक लोकप्रिय पेड़ है, जिसके साथ लोगों की धार्मिक-आध्यात्मिक भावनाएँ जुड़ी रहती हैं। यह उन दुर्लभ पेड़ों में से है, जो दिन और रात दोनों समय ऑक्सीजन का उत्पादन करता है। माना जाता है कि यह 22 घंटे से भी अधिक समय तक ऑक्सीजन देता है और पर्यावरण को शुद्ध करता है। इसी तरह भारत का राष्ट्रीय वृक्ष बरगद भी अधिक ऑक्सीजन देने वाले पेड़ों में शामिल है। यह सदाबहार पेड़ विश्व के सबसे विशाल पेड़ों में आता है और सैकड़ों वर्षों तक खड़ा रहता है। इसे कई औषधीय गुणों से युक्त माना जाता है और यह भी कई धर्मों की आस्था से जुड़ा वृक्ष है।

नीम जैसा औषधीय पेड़ भी प्रकाश संश्लेषण की ऊँची दर रखता है व अधिक ऑक्सीजन का उत्पादन करता है। जल एवं वायु के प्रदूषण के साथ गरमी का सामना करने की इसकी क्षमता उल्लेखनीय रहती है। यह एक शक्तिशाली प्राकृतिक कीटनाशक पेड़ भी है। मधुमेह, अस्थमा, रक्तविकार जैसे रोगों के उपचार में सहायक होने के साथ यह रात को भी ऑक्सीजन छोड़ता है और पर्यावरण को शुद्ध रखता है। घर के बरामदे में इसके बोंसाई पेड़ को लगाया जा सकता है। इन पेड़ों के अतिरिक्त, सागवान, सागौन, अशोक, अर्जुन, जामुन आदि के वृक्ष भी पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन विसर्जित करते हैं। घर में उगाया जाने वाला तुलसी का लोकप्रिय पौधा भी रात को ऑक्सीजन छोड़ता है, जिसकी कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

अपनी औषधीय एवं आध्यात्मिक विशेषताओं के साथ यह बहुत लाभदायक पौधा है। सरदी व गरमी में इसे थोड़ा बचाकर रखना होता है। इसकी झाड़ियों व पत्तियों से आने वाली खुशबू तनाव व उद्विग्नता को शांत करती है। इनके साथ विदेशों से आयातित एवं भारत में लोकप्रिय हो रहा एरोकेरिया या क्रिसमस-ट्री भी एक उपयोगी पौधा है, जो चौबीसों घंटे ऑक्सीजन छोड़ता है। घर के बाहर, गेट पर या बरामदे में लगाने पर यह स्थान की सुंदरता में चार चाँद लगाता है। इन घर के बाहर उगाए जाने वाले वृक्षों के साथ कुछ पौधे घर के अंदर भी कमरों में लगाए जा सकते हैं, जो एक ओर घर की सुंदरता को बढ़ाते हैं, मन को भाते हैं तो दूसरी ओर अपनी ऑक्सीजन विसर्जन एवं प्रदूषण अवशोषण की क्षमता के कारण वातावरण को भी शुद्ध रखते हैं।

इस श्रेणी में ऐलोवेरा को गमले में उगाया जा सकता है। घर के अंदर-बाहर कहीं भी उसे उगाया जा सकता है। इसकी पानी की माँग बहुत कम रहती है। इसको अधिक धूप भी नहीं चाहिए। अपनी चिकित्सकीय एवं सौंदर्य प्रसाधन की विशेषताओं के साथ ऐलोवेरा रात को ऑक्सीजन भी छोड़ता है। एरिका पाम एक लोकप्रिय पौधा है, जिसके छोटे व कुछ ऊँचे पौधों को घर में स्थान की उपलब्धता के हिसाब से सजाया जा सकता है। यह घर की हानिकारक गैस व नमी को सोखता है तथा वायुमंडल को शुद्ध रखता है। यह कम सूर्य की रोशनी में पनपता है तथा तेज रोशनी से इसका बचाव करना होता है।

स्नेक प्लांट या नाग पौधा भी गमले में सजने वाला सुंदर पौधा है। यह घर में निकलने वाली हानिकारक गैस एवं विकिरणों को सोखता है व ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है। इसे भी किसी खास देख-रेख की आवश्यकता नहीं रहती। इसी तरह स्पाइडर प्लांट गमले में उगाया जा सकता है। ऑर्किड के पौधे भी रात को ऑक्सीजन छोड़ते हैं व मस्तिष्क को घुटन से बचाते हैं तथा वातावरण को शुद्ध रखते हैं। जरबेरा भी ऑक्सीजन छोड़ने वाला पौधा है, जिसे गमले में सजाया जा सकता है। इसके गुलाबी, लाल, पीले व सफेद रंग के फूल बहुत सुंदर लगते हैं।

फिडल लीफ फिग चौड़ी पत्तियों वाला पौधा है, जो वायुशोधक एवं नमी हटाने में सहायक रहता है, इसे कमरे में फंगस पैदा करने वाले नमी व गरम स्थल पर लगाया जा सकता है। यह कम रोशनी में भी खूब पनपता है। मनीप्लांट एक प्रचलित पौधा है, जिसे ऑक्सीजन देने वाला एक श्रेष्ठ पौधा माना जाता है। इसे घर के अंदर गमलों से लेकर पानी की बोतलों में कहीं भी उगाया जा सकता है। इसकी टहनी काटकर इसे फिर से उगाया जा सकता है। इसी तरह मोंस्टेरा ऑबलिकुआ का पौधा गमले में उगाया जा सकता है, जो कम धूप व सामान्य रोशनी में पनपने वाला पौधा है और यह वातावरण को शुद्ध करता है।

पीस लिलि एक ऐसा पौधा है, जिसकी हरी-भरी पत्तियाँ आँखों को शीतलता देती हैं। यह भी ऑक्सीजन का उत्सर्जन करता है। इसके सफेद फूल बहुत सुंदर एवं सुकूनदायी लगते हैं। घर के अंदर पनपने वाले ऐसे पौधों को एक वर्ग फीट में एक पौधे के हिसाब से सजाया जा सकता है। इस तरह दस वर्ग फीट में दस पौधे उगाए जा सकते हैं।

इनकी जल, नमी, खाद व प्रकाश की सामान्य-सी आवश्यकता को पूरा करते हुए इन पौधों को घर के अंदर व बरामदे में उगाया जा सकता है। ऑक्सीजन-उत्सर्जन के साथ, वायुमंडल की शुद्धि करने के साथ ये घर की शोभा बढ़ाते हैं। इनकी देख-रेख के साथ इनका सान्निध्य मन को शांति व सुकून देता है और ये प्राणवायु देने के साथ ही प्रसन्नता प्राप्ति हेतु विश्वसनीय सहचर साबित होते हैं। ❑

**भगवान और उनके ऐश्वर्य में ऐश्वर्य दो दिन के लिए है, भगवान ही सत्य है। जिस तरह जादूगर और उसके जादू में जादू देखकर सभी लोग विस्मित हो जाते हैं, परंतु जादू झूठा है, जादूगर ही सत्य है। ठीक इसी तरह मालिक और उसके बगीचा में बगीचा देखकर बगीचे के मालिक की खोज करनी चाहिए।**

***—स्वामी रामकृष्ण परमहंस***

# संत नामदेव की भगवद्दृष्टि

यदि मन निर्मल हो और हृदय में भगवान के लिए अगाध प्रेम हो तो भक्त को भगवान की कृपा अवश्य प्राप्त होती है। भगवान को प्रेम से ही पाया जा सकता है; क्योंकि भगवान स्वयं प्रेमरूप हैं। प्रेम के कारण ही तो भगवान राम ने शबरी के जूठे बेर खाए तो वहीं भगवान कृष्ण ने दुर्योधन के मेवा-मिष्टान्न आदि छप्पन प्रकार के भोगों को ठुकराकर विदुर के घर शाक और केले के छिलके तक खाए।

भारत की आध्यात्मिक भूमि में ऐसे अनेक भक्त हुए हैं, जिन्हें भगवान के दिव्य स्वरूप का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन्हीं में से एक नाम संत नामदेव का भी है। उनकी निश्छलता, निष्कपटता, पवित्रता व सच्ची भक्ति के कारण निर्गुण, निराकार भगवान साकार, सगुण रूप में प्रकट होकर उन्हें अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया करते थे।

नामदेव बाल्यावस्था से ही भगवान के प्रेम में डूबे रहते थे। उनके निश्छल, निष्कपट प्रेम के कारण भगवान पांडुरंग ने अपने दिव्य चतुर्भुज रूप में प्रकट होकर पहली बार उनकी बाल्यावस्था में ही उन्हें निहाल कर दिया था। कहते हैं कि भगवान प्रत्यक्ष प्रकट होकर उनके द्वारा अर्पित भोग को ग्रहण किया करते थे। जब भगवान भक्त की सच्ची भक्ति को देखकर भक्त के हृदय में आ विराजते हैं तो भक्त की दृष्टि भी भगवद्दृष्टि बन जाती है।

ऐसा भक्त फिर अपने मन की आँखों से पल-पल अपने भगवान का, अपने आराध्य का दर्शन कर निहाल होता रहता है, आनंदित होता रहा है। उसकी आँखों से संसार वैसा नहीं दिखता जैसा सामान्य जनों को अपनी भौतिक दृष्टि से दिखता है। भक्त को हर वस्तु में, हर व्यक्ति में, हर प्राणी में उसके आराध्य, उसके भगवान ही दिखने लगते हैं।

संत नामदेव की भगवद्दृष्टि से जुड़ी अनेक रोचक घटनाएँ व प्रेरक प्रसंग हैं। एक बार वे संत ज्ञानेश्वर के साथ यात्रा कर रहे थे। दोनों भगवच्चर्चा करते हुए जा रहे थे। यात्रा में दोनों को जोर की प्यास लगी। रास्ते में एक कुआँ मिला, पर वह सूखा था। उसमें पानी का नामोनिशान तक न था। फिर पानी पिएँ कैसे? संत ज्ञानेश्वर ने अपने योगबल से कुएँ के भीतर जमीन में प्रवेश कर पानी पिया और उनके लिए भी थोड़ा जल ऊपर लेकर आ गए, पर नामदेव उनसे बोले—"मैं यह जल नहीं पीऊँगा।"

संत ज्ञानेश्वर बोले—"आखिर क्यों? जल-तो-जल है। प्यास बुझनी चाहिए।" इस पर नामदेव बोले—"क्या मेरे विट्ठल को मेरी चिंता नहीं होगी। क्या उन्हें नहीं पता कि मैं प्यासा हूँ?" कहते हैं कि नामदेव के ऐसा कहते ही उसी क्षण कुआँ जल से ऊपर तक भर आया और फिर नामदेव जी ने जल पिया।

एक बार संत नामदेव की कुटिया में आग लग गई और वे प्रेम में मस्त होकर आस-पास की अन्य वस्तुओं को भी अग्नि में यह कहकर फेंकने लगे—"हे मेरे प्रभु! हे मेरे पांडुरंग! आज आप लाल-लाल लपटों का रूप बनाए पधारे हो, लेकिन बाकी वस्तुओं ने क्या अपराध किए हैं, आप इन्हें भी स्वीकार करो प्रभु।" उनके ऐसा कहते ही अग्नि बुझ गई। अग्नि की उठती हुई लपटों में भी उन्हें उनके पांडुरंग ही दिख पड़े।

एक बार नामदेव रोटी बना रहे थे तभी एक कुत्ता वहाँ आया और उनके पास रखी रोटियाँ उठाकर वहाँ से भाग निकला। यह देखकर नामदेव अपने हाथ में घी का कटोरा लिए उस कुत्ते के पीछे दौड़ पड़े। वे भागते जाते थे और प्रेम में विह्वल होकर कहते जाते थे—"हे मेरे प्रभु, हे मेरे पांडुरंग! आपने जो रोटियाँ ली हैं, उनमें मैंने अभी घी तो चुपड़ा ही नहीं। हे प्रभु! वे रोटियाँ सूखी हैं। मुझे उन रोटियों में घी तो लगा लेने दीजिए। मुझे घी तो चुपड़ लेने दीजिए मेरे प्रभु! फिर भोग लगाइए।"

संत नामदेव भगवत्प्रेम में इतने भावविह्वल हो गए कि उन्हें उस भागते हुए कुत्ते में भी उनके पांडुरंग दिख पड़े। कहते हैं कि नामदेव की ऐसी परम भक्ति को देखकर पांडुरंग भगवान ने कुत्ते का रूप त्यागकर अपने वास्तविक

स्वरूप को धारण किया एवं शंख, चक्र, गदा आदि धारण किए अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हो गए। ऐसी अनेकानेक घटनाएँ हैं, जिनसे संत नामदेव की प्रभुभक्ति, भगवद्भक्ति व सर्वत्र भगवद्दृष्टि दृष्टिगोचर होती है। उनका जीवन सचमुच अमृत का वह निरंतर बहता हुआ झरना है, जिसमें डूबकर हम स्वयं के लिए भी भगवत्कृपा, भगवद्दर्शन का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

यदि साधना सच्ची हो, भगवान में अटूट श्रद्धा और विश्वास हो, मन निर्मल हो और हृदय सरोवर प्रेम से लबालब भर आया हो तो भक्त के हृदय में भगवान प्रकट होते ही हैं। वे विभिन्न रूपों में उसे निहाल करते-ही-करते हैं। भगवान अंतर्यामी हैं, इसलिए वे हमारे अंतस् की निर्मलता, पवित्रता को देखते हैं।

भगवान सर्वव्यापी हैं, इसलिए वे भक्त की पात्रता को देख कर कहीं भी प्रकट हो सकते हैं। भगवान सर्वज्ञ हैं, इसलिए वे हमारे गुण-दोष, अच्छे-बुरे सभी कर्मों को जानते हैं। भगवान से कुछ भी न तो छिपा है और न ही उनसे कुछ छिपाया जा सकता है। भगवान को चतुराई या चपलता से नहीं, वरन निर्मलता, पवित्रता व प्रेम से ही रिझाया जा सकता है।

भगवान निर्गुण-निराकार हैं, पर भक्त के प्रेम के वश होकर वे प्रकट होते हैं। भगवान अव्यक्त हैं, पर भक्त के प्रेम में व्यक्त भी हो सकते हैं। भगवान भक्तवत्सल हैं, इसलिए वे भक्त की पुकार सुनते अवश्य हैं। वे अपने भक्त पर कृपा अवश्य ही करते हैं। वे भक्त के ऊपर अपना अनुदान-अनुग्रह अवश्य बरसाते हैं। अस्तु यदि साधना करनी ही है तो हम सच्ची साधना क्यों न करें?

यदि भक्ति करनी ही है तो सच्ची भगवद्भक्ति क्यों न करें? सच्ची गुरुभक्ति क्यों न करें? अपने मन की मलिनता को मिटाकर और मन की निर्मलता को पाकर हम भगवद्दर्शन, भगवत्कृपा व भगवत्प्रेम के पात्र क्यों न बनें? संत नामदेव जी के जीवन से ये सूत्र हमें अवश्य अपनाने चाहिए। ❑

**भगवान बुद्ध एक बार आनंद के साथ एक सघन वन में से होकर गुजर रहे थे। यात्रा के क्रम में ज्ञानचर्चा भी चल रही थी। सदैव ध्यानस्थ बुद्ध की अवस्था में व्यतिक्रम उत्पन्न करते आनंद उनसे क्षमा माँगते हुए अपनी जिज्ञासा का समाधान करने का विनम्र आग्रह करने लगे। अपने स्नेहपूरित नेत्रों से अपने प्रिय शिष्य आनंद को निहार बुद्ध ने इसकी अनुमति प्रदान की। आनंद बोले—"भगवन्! आप तो ज्ञान के भंडार हैं। आपने जो जाना, क्या आपने उसे हमें बता दिया?" बुद्ध ने उलटकर पूछा—"आनंद! यह बताओ कि इस जंगल में भूमि पर कितने सूखे पत्ते पड़े होंगे और फिर हम जिस वृक्ष के नीचे खड़े हैं, उस पर लगे सूखे पत्तों की संख्या कितनी होगी? इसके बाद अपने पैरों तले जो अभी पड़े हैं, वे कितने हो सकते हैं?" आनंद इन प्रश्नों का उत्तर देने की स्थिति में नहीं थे। प्रश्न पूछ लेने के उपरांत उत्तर की प्रतीक्षा में बुद्ध कुछ देर प्रशांत अवस्था में खड़े रहे व अंततः अपना मौन तोड़ते हुए स्वयं ही समझाने लगे—"वत्स! ज्ञान का विस्तार इतना विस्तृत है, जितना इस वन-प्रदेश में बिछे हुए सूखे पत्तों का परिवार। मैंने मात्र इतना ही जाना है, जितना ऊपर वाले वृक्ष का पतझड़। इसमें भी तुम सभी को इतना ही बताया जा सका, जितना कि अपने पैरों के नीचे कुछेक पत्तों का समूह पड़ा है।" वास्तव में ज्ञान का समुद्र अत्यंत विशाल है, जिसकी थाह लेना दुःसाध्य है।**

# भारतीय राजनीति के प्रकाशस्तंभ लाल बहादुर शास्त्री

लाल बहादुर शास्त्री भारतीय राजनीति के प्रकाशस्तंभ हैं। उन्होंने अपने समय में जिस साहस, धैर्य, सादगी और शुचिता का पालन किया वह अनुकरणीय है। उनका जन्म 2 अक्टूबर, 1904 को मुगलसराय में मुंशी शारदा प्रसाद श्रीवास्तव के यहाँ हुआ था। उनके पिता प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक थे। अत: सब उन्हें मुंशी जी ही कहा करते थे। बाद में उन्होंने राजस्व विभाग में लिपिक (क्लर्क) की नौकरी कर ली थी। उनकी माँ का नाम 'रामदुलारी' था।

परिवार में सबसे छोटा होने के कारण बालक लाल बहादुर को परिवार वाले प्यार से नन्हे कहकर ही बुलाया करते थे। जब नन्हे अठारह महीने के हुए तब दुर्भाग्य से उनके पिता का निधन हो गया। उनकी माँ रामदुलारी अपने पिता हजारीलाल के घर मिर्जापुर चली गईं। दुर्भाग्यवश कुछ समय बाद उनके नाना भी नहीं रहे। बिना पिता के बालक नन्हे की परवरिश करने में उन्होंने उनकी माँ का बहुत सहयोग किया। ननिहाल में रहते हुए उन्होंने प्राथमिक शिक्षा ग्रहण की। उसके बाद उनकी शिक्षा हरिश्चंद्र हाई स्कूल और काशी विद्यापीठ में हुई।

काशी विद्यापीठ से शास्त्री की उपाधि मिलते ही प्रबुद्ध बालक ने जन्म से चला आ रहा जातिसूचक शब्द श्रीवास्तव हमेशा के लिए हटा दिया और अपने नाम के आगे शास्त्री लगा लिया। इसके पश्चात 'शास्त्री' लाल बहादुर के नाम का पर्याय ही बन गया। भारत में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आंदोलन के एक कार्यकर्त्ता लाल बहादुर थोड़े समय के लिए सन् 1929 में जेल गए।

जेल से रिहा होने पर उन्होंने एक राष्ट्रवादी विश्वविद्यालय काशी विद्यापीठ (वर्तमान महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ) में अध्ययन किया और स्नातकोत्तर शास्त्री (शास्त्रों का विद्वान) की उपाधि प्राप्त की। स्नातकोत्तर के बाद वे गांधी जी के अनुयायी के रूप में फिर राजनीति में लौटे।

कई बार वे जेल गए और संयुक्त प्रांत जो अब उत्तर प्रदेश में है; कांग्रेस पार्टी में प्रभावशाली पद ग्रहण किया। सन् 1937 और सन् 1946 में शास्त्री जी प्रांत की विधायिका में निर्वाचित हुए। सन् 1928 में उनका विवाह गणेश प्रसाद की पुत्री ललिता से हुआ; जिनसे उनकी छह संतानें हुईं; चार पुत्र—हरिकृष्ण, अनिल, सुनील व अशोक और दो पुत्रियाँ—कुसुम व सुमन। उनके चार पुत्रों में से अनिल शास्त्री और सुनील शास्त्री अभी भी हैं व शेष दो दिवंगत हो चुके हैं।

सन् 1929 में इलाहाबाद आने के बाद उन्होंने श्री टंडन जी के साथ 'भारत सेवक संघ' की इलाहाबाद इकाई के सचिव के रूप में काम किया। यहीं उनकी नजदीकी नेहरू जी से भी बढ़ी। इसके बाद से उनका राजनीतिक कद निरंतर बढ़ता गया, जिसकी परिणति नेहरू मंत्रिमंडल में गृहमंत्री के तौर पर उनके शामिल होने से हुई।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात शास्त्री जी को उत्तर प्रदेश के संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किया गया था। वे गोविंद बल्लभ पंत के मुख्यमंत्री कार्यकाल में प्रहरी एवं यातायात मंत्री बने। यातायात मंत्री के समय में उन्होंने प्रथम बार किसी महिला को संवाहक के पद पर नियुक्त किया। प्रहरी विभाग के मंत्री होने के बाद उन्होंने भीड़ को नियंत्रण में रखने के लिए लाठी की जगह पानी की बौछार का प्रयोग प्रारंभ कराया।

सन् 1951 में जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव नियुक्त किए गए। सन् 1952 में वे संसद के लिए निर्वाचित हुए और केंद्रीय रेलवे व परिवहन मंत्री बने। सन् 1961 में गृहमंत्री के प्रभावशाली पद पर नियुक्ति के बाद उन्हें एक कुशल मध्यस्थ के रूप में प्रतिष्ठा मिली। तीन साल बाद जवाहरलाल नेहरू के बीमार पड़ने पर उन्हें बिना किसी विभाग का मंत्री नियुक्त किया गया और नेहरू की मृत्यु के बाद जून, 1964 में वे भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री बने।

भारत की आर्थिक समस्याओं से प्रभावी ढंग से न निपट पाने के कारण शास्त्री जी की आलोचना हुई, लेकिन जम्मू-कश्मीर के विवादित प्रांत पर पड़ोसी पाकिस्तान के साथ वैमनस्य भड़कने पर सन् 1965 में उनके द्वारा दिखाई गई दृढ़ता के लिए उन्हें बहुत लोकप्रियता भी मिली। ताशकंद में पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खान के साथ युद्ध समाप्त करने की ताशकंद घोषणा के समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद में उनकी मृत्यु हो गई। शास्त्री जी के बाद नेहरू जी की पुत्री इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं।

शास्त्री जी को उनकी सादगी, देशभक्ति और ईमानदारी के लिए पूरा भारत श्रद्धापूर्वक याद करता है। उन्हें सन् 1966 में भारतरत्न से सम्मानित किया गया। शास्त्री जी ने कभी भी अपने पद या सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग नहीं किया। शास्त्री जी के पुत्र सुनील शास्त्री की पुस्तक 'लालबहादुर शास्त्री, मेरे बाबूजी' के अनुसार शास्त्री जी आज के राजनीतिज्ञों से बिलकुल भिन्न थे। उन्होंने कभी भी अपने या सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग नहीं किया। अपनी इस दलील के पक्ष में एक नजीर देते हुए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—शास्त्री जी जब सन् 1964 में प्रधानमंत्री बने, तब उन्हें सरकारी आवास के साथ ही इंपाला शेवरले कार मिली, जिसका उपयोग वे न के बराबर ही किया करते थे। वह गाड़ी किसी राजकीय अतिथि के आने पर ही गैराज से बाहर निकाली जाती थी।

किताब के अनुसार एक बार उनके पुत्र सुनील शास्त्री किसी निजी काम के लिए इंपाला कार ले गए और वापस लाकर चुपचाप खड़ी कर दी। शास्त्री जी को जब पता चला तो उन्होंने ड्राइवर को बुलाकर पूछा—"कल कितने किलोमीटर गाड़ी चलाई गई और जब ड्राइवर ने बताया कि चौदह किलोमीटर तो उन्होंने निर्देश दिया—लिख दो, चौदह किलोमीटर प्राइवेट यूज। शास्त्री जी यहीं नहीं रुके, बल्कि उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाकर निर्देश दिया कि उनके निजी सचिव से कहकर वे सात पैसे प्रतिकिलोमीटर की दर से सरकारी कोश में पैसे जमा करवा दें।"

सुनील शास्त्री की पुस्तक के अनुसार शास्त्री जी को खुद कष्ट उठाकर दूसरों को सुखी देखने में जो आनंद मिलता था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक बार की घटना है—जब शास्त्री जी रेलमंत्री थे और वे मुंबई जा रहे थे। उनके लिए प्रथम श्रेणी का डिब्बा लगा था। गाड़ी चलने पर शास्त्री जी बोले—"डिब्बे में काफी ठंढक है, वैसे बाहर गरमी है।" उनके पी0ए0 कैलाश बाबू ने कहा—"जी! इसमें कूलर लग गया है।" शास्त्री जी ने पैनी निगाह से उन्हें देखा और आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा—"कूलर लग गया है? बिना मुझे बताए? आप लोग कोई काम करने से पहले मुझसे पूछते क्यों नहीं? क्या और सारे लोग जो गाड़ी में चल रहे हैं, उन्हें गरमी नहीं लगती होगी?"

शास्त्री जी ने कहा—"सच बात तो यह है कि मुझे भी तृतीय श्रेणी में चलना चाहिए, लेकिन उतना तो नहीं हो सकता, पर जितना हो सकता है, उतना तो करना चाहिए।" उन्होंने आगे कहा—"यह एक बड़ा गलत काम हुआ है। आगे गाड़ी जहाँ भी रुके, पहले कूलर निकलवाइए।" मथुरा स्टेशन पर गाड़ी रुकी और कूलर निकलवाने के बाद ही गाड़ी आगे बढ़ी। बहुत दिनों तक फर्स्ट क्लास में उस डिब्बे में कूलर के स्थान पर लकड़ी लगी रही।

इस पुस्तक में एक घटना का वर्णन करते हुए बताया गया है कि एक बार शास्त्री जी की अलमारी साफ की गई और उसमें से अनेक फटे-पुराने कुरते निकाल दिए गए, लेकिन शास्त्री जी ने वे कुरते वापस माँगकर कहा—"अब नवंबर आएगा, जाड़े के दिन होंगे, तब ये सब काम आएँगे। इनके ऊपर से कोट पहन लूँगा न!" शास्त्री जी का खादी के प्रति अनुराग ही था कि उन्होंने फटे-पुराने समझ हटा दिए गए कुरतों को बहुत सहेजते हुए कहा—"ये सब खादी के कपड़े हैं। बुनकरों ने इन्हें बड़ी मेहनत से बनाया है। इनका एक-एक सूत अच्छी तरह से काम आना चाहिए।"

शास्त्री जी की सादगी और किफायत की यह स्थिति थी कि एक बार उन्होंने अपना फटा हुआ कुरता अपनी पत्नी को देते हुए कहा—"इसके रूमाल बना दो।" इस सादगी और किफायत की कल्पना तो आज के दौर के किसी भी राजनीतिज्ञ से नहीं की जा सकती है।

वे क्या सोचा करते थे, वह जानना बहुत कठिन था; क्योंकि वे कभी भी अनावश्यक बात नहीं करते थे। दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने के लिए वे किसी भी प्रकार का कष्ट उठाने में संकोच नहीं किया करते थे। वे राजनीति के एक-एक चमकते सितारे हैं, जिनकी कीर्ति अभी भी अमर ही है। आज भी भारतीय राजनीति को शास्त्री जी के समान राजनेता की आवश्यकता है। ❑

# प्रकृति की पाठशाला में विद्यार्जन

मंद शीतल सलिल हवाओं के झोंके मन को आनंदित कर देने वाले थे। प्राकृतिक हरीतिमा से आच्छादित सरोवर के निकट फैली वृक्ष-लताएँ अपनी उमंग भरी पुलकन को झूम-झूमकर अभिव्यक्त करती दिख पड़ रही थीं। संपूर्ण क्षेत्र ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह किसी उत्सव की भागीदारी में लीन हो गया हो। वसंत ऋतु का समय था। महर्षि जरत्कारू अपने गुरुकुल के निकट स्थित सरोवर के तट पर शिष्यों को संबोधित करते हुए कह रहे थे कि क्या तुमने कभी प्रकृति का दर्शन किया है ?

शिष्य मंडली में कुछ ने 'हाँ' कहा तो कुछ प्रश्न की विचित्रता को देखकर कशमकश में पड़ गए। शिष्यों के मानसिक मंथन को देखकर महर्षि ने उन सभी से अपने-अपने निजी अनुभवों को व्यक्त करने का संकेत दिया। अभिव्यक्तियों के प्रस्तुतीकरण के क्रम में लगभग सभी ने स्थूल, प्राकृतिक सौंदर्य की सामान्य-सी व्याख्या की। इस क्रम के पूरा हो जाने के उपरांत शिष्यों का ध्यान महर्षि की ओर आकृष्ट हुआ। महर्षि को उन्होंने बड़ी ही विचित्र अवस्था में पाया मानो वे उसी क्षण प्रकृति को निहारते हुए उसके वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर रहे हों।

विगत क्रम की समाप्ति की उन्हें कोई सुध-बुध न थी। उनके नेत्र तो मानो कहीं और जा अटके थे एवं किसी अभूतपूर्व दर्शन में एकटक लीन हो गए थे। महर्षि की इस विचित्र अवस्था ने शिष्यों को अचंभे में डालकर उन्हें किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्थिति में पहुँचा दिया था। उनमें उनसे संवाद का साहस न हुआ। अत: वे सभी अग्रिम आदेश हेतु प्रतीक्षारत शांत यथास्थान बैठे रहे। महर्षि की यह अवस्था कुछ कम विस्मयकारी न थी। अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे कि महर्षि के नेत्रों से आनंदस्वरूप अश्रु झरने लगे।

अश्रुओं से अभिपूरित महर्षि के तेजस्वी मुखमंडल को देखकर यह अनुमान लगा पाना सहज ही था कि सामयिक भाव कृतज्ञता के हैं, जो आनंद की पूर्णता के भी आगे निकल जाने पर नेत्रों से बाहर की ओर छलक आए थे। भाव की इस दुर्लभ अवस्था को प्रत्यक्ष देख सभी शिष्यों में आनंद का संचार होने लगा एवं वे सभी स्वयं को धन्य अनुभव कर भावविभोर हो रहे थे। एक लंबे गहरे श्वास के साथ महर्षि सामान्य अवस्था में लौटकर अपने शिष्यों को स्नेह भरी दृष्टि से निहारते हुए कहने लगे—"प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है, जानना चाहोगे ?"

शिष्यों में उत्तर को जानने की व्यग्रता थी। महर्षि शिष्यों को संबोधित करते हुए बोले—"प्रकृति अपने वास्तविक स्वरूप में माता के समान हैं, जो सृष्टि के समस्त प्राणियों की उत्पत्ति से लेकर उनके पालन-पोषण के संपूर्ण भार का वहन स्वयं करती है।" महर्षि आगे बोले—"प्रकृति के दर्शन की अभिव्यक्ति कदाचित् संभव नहीं। यह तो वैसी ही विवशताजन्य स्थिति है, जिसमें कि पुत्र अपनी माता की भावना व जीवन-निर्माण में किए गए योगदान को अभिव्यक्त करने में असमर्थता अनुभव करता है।"

प्रकृति के मातृत्वभाव व संरचना में निहित उद्देश्यों पर यदि प्रकाश डाला जाए तो तुम सभी इसकी संवेदनशीलता की पराकाष्ठा की कल्पना मात्र से हतप्रभ रह जाओगे। चराचर जगत की हर छोटी-बड़ी आवश्यकताओं की समय पर पूर्ति के साथ ही उनके कल्याण एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त करने का कार्य भी ये बड़े ही सुनियोजित ढंग से संपन्न करती है।" अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए महर्षि ने कहा—"प्रकृति से बढ़कर दूसरा कोई गुरु नहीं है। व्यवहार जगत् के शिक्षण में जितना महान योगदान प्रकृति का होता है, उतना और किसी का नहीं।"

वे आगे बोले—"जीवन के विभिन्न खट्टे-मीठे अनुभवों एवं साथ ही घटित होने वाले उतार-चढ़ावों के पीछे भी प्रकृति के प्रशिक्षण से संबंधित उच्च उद्देश्य ही निहित होता है; जिसके द्वारा वह जीव के जीवन के विभिन्न

# प्रकृति की पाठशाला में विद्यार्जन

मंद शीतल सलिल हवाओं के झोंके मन को आनंदित कर देने वाले थे। प्राकृतिक हरीतिमा से आच्छादित सरोवर के निकट फैली वृक्ष-लताएँ अपनी उमंग भरी पुलकन को झूम-झूमकर अभिव्यक्त करती दिख पड़ रही थीं। संपूर्ण क्षेत्र ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह किसी उत्सव की भागीदारी में लीन हो गया हो। वसंत ऋतु का समय था। महर्षि जरत्कारू अपने गुरुकुल के निकट स्थित सरोवर के तट पर शिष्यों को संबोधित करते हुए कह रहे थे कि क्या तुमने कभी प्रकृति का दर्शन किया है ?

शिष्य मंडली में कुछ ने 'हाँ' कहा तो कुछ प्रश्न की विचित्रता को देखकर कशमकश में पड़ गए। शिष्यों के मानसिक मंथन को देखकर महर्षि ने उन सभी से अपने-अपने निजी अनुभवों को व्यक्त करने का संकेत दिया। अभिव्यक्तियों के प्रस्तुतीकरण के क्रम में लगभग सभी ने स्थूल, प्राकृतिक सौंदर्य की सामान्य-सी व्याख्या की। इस क्रम के पूरा हो जाने के उपरांत शिष्यों का ध्यान महर्षि की ओर आकृष्ट हुआ। महर्षि को उन्होंने बड़ी ही विचित्र अवस्था में पाया मानो वे उसी क्षण प्रकृति को निहारते हुए उसके वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर रहे हों।

विगत क्रम की समाप्ति की उन्हें कोई सुध-बुध न थी। उनके नेत्र तो मानो कहीं और जा अटके थे एवं किसी अभूतपूर्व दर्शन में एकटक लीन हो गए थे। महर्षि की इस विचित्र अवस्था ने शिष्यों को अचंभे में डालकर उन्हें किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्थिति में पहुँचा दिया था। उनमें उनसे संवाद का साहस न हुआ। अत: वे सभी अग्रिम आदेश हेतु प्रतीक्षारत शांत यथास्थान बैठे रहे। महर्षि की यह अवस्था कुछ कम विस्मयकारी न थी। अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे कि महर्षि के नेत्रों से आनंदस्वरूप अश्रु झरने लगे।

अश्रुओं से अभिपूरित महर्षि के तेजस्वी मुखमंडल को देखकर यह अनुमान लगा पाना सहज ही था कि सामयिक भाव कृतज्ञता के हैं, जो आनंद की पूर्णता के भी आगे निकल जाने पर नेत्रों से बाहर की ओर छलक आए थे। भाव की इस दुर्लभ अवस्था को प्रत्यक्ष देख सभी शिष्यों में आनंद का संचार होने लगा एवं वे सभी स्वयं को धन्य अनुभव कर भावविभोर हो रहे थे। एक लंबे गहरे श्वास के साथ महर्षि सामान्य अवस्था में लौटकर अपने शिष्यों को स्नेह भरी दृष्टि से निहारते हुए कहने लगे—"प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है, जानना चाहोगे ?"

शिष्यों में उत्तर को जानने की व्यग्रता थी। महर्षि शिष्यों को संबोधित करते हुए बोले—"प्रकृति अपने वास्तविक स्वरूप में माता के समान हैं, जो सृष्टि के समस्त प्राणियों की उत्पत्ति से लेकर उनके पालन-पोषण के संपूर्ण भार का वहन स्वयं करती है।" महर्षि आगे बोले—"प्रकृति के दर्शन की अभिव्यक्ति कदाचित् संभव नहीं। यह तो वैसी ही विवशताजन्य स्थिति है, जिसमें कि पुत्र अपनी माता की भावना व जीवन-निर्माण में किए गए योगदान को अभिव्यक्त करने में असमर्थता अनुभव करता है।"

प्रकृति के मातृत्वभाव व संरचना में निहित उद्देश्यों पर यदि प्रकाश डाला जाए तो तुम सभी इसकी संवेदनशीलता की पराकाष्ठा की कल्पना मात्र से हतप्रभ रह जाओगे। चराचर जगत की हर छोटी-बड़ी आवश्यकताओं की समय पर पूर्ति के साथ ही उनके कल्याण एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त करने का कार्य भी ये बड़े ही सुनियोजित ढंग से संपन्न करती है।" अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए महर्षि ने कहा—"प्रकृति से बढ़कर दूसरा कोई गुरु नहीं है। व्यवहार जगत् के शिक्षण में जितना महान योगदान प्रकृति का होता है, उतना और किसी का नहीं।"

वे आगे बोले—"जीवन के विभिन्न खट्टे-मीठे अनुभवों एवं साथ ही घटित होने वाले उतार-चढ़ावों के पीछे भी प्रकृति के प्रशिक्षण से संबंधित उच्च उद्देश्य ही निहित होता है; जिसके द्वारा वह जीव के जीवन के विभिन्न

आयामों को प्रकाशित करती है, उनकी पूर्णता का मार्ग प्रशस्त करती है।'' प्रात:कालीन सत्र की इस विशेष प्रेरणा के साथ शिष्यों ने आश्रम की ओर प्रस्थान किया। कृतज्ञ हो वे सभी शांतभाव से गंतव्य की ओर बढ़ रहे थे। आज उन्होंने जाना कि शिक्षण हेतु सारी सृष्टि ही उपलब्ध है, जिसका अनंत विस्तार हमें स्वयं भी अनंतता प्रदान कर सकता है।

गुरुकुल-व्यवस्था के अंतर्गत कपाट-कोष्ठों में बंद कर विद्यार्थियों को शिक्षण नहीं प्रदान किया जाता है, वरन प्रकृति की महत्ता को स्वीकारते गुरुकुल के अधिष्ठाता विद्यार्थियों की मनोभूमि के अनुरूप उन्हें प्रकृति की पाठशाला में व्यावहारिक शिक्षण देने की ऐसी व्यवस्था बनाते हैं कि व्यक्तित्व में प्रखरता का समावेश व संवर्द्धन होकर ही रहता है। उस दिन उनके उस उद्‌बोधन के क्रम ने उनके गुरुकुल में पढ़ रहे एक छात्र विद्रुध को विशेष रूप से प्रभावित किया। उसने महर्षि से प्रार्थना की कि वे उसको यह अनुमति दें कि वह प्रकृति की पाठशाला में घूमते हुए जीवन के सत्य ज्ञान का अर्जन कर सके।

महर्षि को विद्यार्थी प्रतिभावान लगा अस्तु उन्होंने उसे कुछ ग्रंथ ज्ञानार्जन हेतु सौंपे व साथ ही सौ गायें भी सौंपीं और यह आदेश दिया कि वह आश्रम तब लौटे, जब वे गायें हजार गायों में बदल जाएँ। गुरु के आदेश का परिपालन करने हेतु विद्रुध निकल पड़ा। उसे बीस वर्ष लगे और इस अवधि में गायों की संख्या हजार हो गई। वे सभी हृष्ट-पुष्ट अवस्था में थीं। इस बीच प्रकृति सान्निध्य एवं गुरु के परोक्ष संरक्षण में अनेकों के साथ संपर्क साधने और उनसे परामर्श करने का अवसर भी उसे मिला।

गुरु की आज्ञा, ईश्वरविश्वास व प्रकृति के साहचर्य में मार्ग की सभी कठिनाइयों और समस्याओं से वह निपटता रहा। निरंतर संघर्ष व अध्यवसाय का ही प्रतिफल था कि कालांतर में उसकी प्रतिभा निखर पड़ी। जब वह वापस लौटा तो उसके मुखमंडल पर ब्रह्मतेज को झलकते स्पष्ट देखा जा सकता था। प्रकृति की पाठशाला में अपनी बुद्धि के सम्यक प्रयोग से जो उसने समझा और सीखा था, वह आश्रम के भीतर रह रहे विद्यार्थियों से कहीं अधिक था।

महर्षि जरत्कारू अपने इस शिष्य के साहस को देखकर अतीव प्रसन्न हुए। अपने आश्रम हेतु उन्हें एक समर्थ उत्तराधिकारी की तलाश थी सो वह इस परीक्षा के माध्यम से प्राप्त भी हो चुकी थी। वे उसे आशीर्वादस्वरूप आश्रम संबंधी समस्त कार्यभार सौंप स्वयं अन्यत्र बड़े कार्यों हेतु प्रस्थान कर गए। ❑

**सम्राट बिंबसार को सत्य का स्वरूप जानने की इच्छा हुई। उन्होंने भगवान महावीर से कहा—''भगवन्! मैं सत्य को जानना चाहता हूँ। उसको प्राप्त करना चाहता हूँ। उसे प्राप्त करने के लिए मैं किसी भी ऊँचाई तक पहुँच सकने में सक्षम हूँ।''**

**सम्राट की बात सुनकर भगवान महावीर को लगा कि दुनिया को जीतने वाला सम्राट सत्य को भी उसी प्रकार जीतने का इच्छुक है। अहंकार के वशीभूत होकर वह सत्य को भी क्रय करने की वस्तु मान बैठा है और उसे उसी तरह प्राप्त करने का इच्छुक है।**

**उन्होंने बिंबसार को समझाया—''वत्स! सत्य को न तो खरीदा जा सकता है और न उसे दान या भिक्षा के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सत्य कोई राज्य भी नहीं कि जिस पर आक्रमण करके तुम विजय प्राप्त कर लो। सत्य को प्राप्त करने के लिए अहं को गलाना पड़ता है और अहंकारशून्य होने पर ही सत्य का बोध होता है।'' बिंबसार को अपनी गलती का अनुभव हो गया।**

# प्रायश्चित से करें पापकर्मों का परिमार्जन

जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ अपने व्यक्तित्व का परिष्कार करना है। व्यक्ति जीवन में अंदर एवं बाहर जिस श्रेष्ठता एवं देवत्व को देखना चाहता है; जीवन में जिस सुख, शांति एवं समृद्धि की चाह रखता है, वे स्थायी रूप में मूलत: इसी आधार पर संभव होते हैं। इसके लिए सतत अपने चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार का परिमार्जन, परिष्कार करना आवश्यक होता है।

यदि वह इस कार्य में सचेत नहीं है तो वह स्वयं ही अपना सबसे बड़ा दुश्मन साबित होता है। अपनी ही दुर्बलताएँ, कमजोरियाँ, आदतें उसे ऐसे चक्रव्यूह में उलझाए रखती हैं कि जीवन सार्थकता के बोध से वंचित रह जाता है। अपने ही दुष्कर्मों का बोझ उस पर भारी पड़ जाता है। पतन, पराभव एवं अवनति के अंतहीन कुचक्र में जीवन पिसता रहता है, घुटता रहता है। अपनी आदतों का गुलाम व्यक्ति दुष्प्रवृत्तियों एवं अनैतिक आचरण तथा पापकर्मों में लिप्त रहता है।

इन सबके चलते जीवन नरकतुल्य बन जाता है— जिसके मूल में रहते हैं गहन अंतराल में जड़ जमाए कुसंस्कार, जिनका परिमार्जन अधिक समय तक नहीं टाला जा सकता; क्योंकि जीवनीशक्ति को कुंद करने वाले चिंतन-चरित्र एवं व्यवहार को दूषित कर रहे इस बोझ के कारण व्यक्ति जीवन में एक भी कदम आगे नहीं बढ़ा पाता। स्थिति कुछ ऐसी होती है, जैसे कोई नाव किनारे से बँधी हो और उसे सागर पार करना हो या किसी की पीठ पर भारी पत्थर लदा हो और उसे पहाड़ चढ़ना हो। स्थिति निर्मल जल के स्रोत पर अड़ी पड़ी एक बड़ी चट्टान-सी होती है, जहाँ व्यक्ति पानी के लिए तरस रहा हो।

जीवन की यह विकट स्थिति व्यापक स्तर पर जीवन का सत्य है, जिसके कारण व्यक्ति के जीवन की वे संभावनाएँ साकार नहीं हो पातीं, जिनको लेकर वह धरती पर आया था। जीवन की ऊँची चाह रखते हुए भी वह जीवन में नीच कर्मों में लिप्त रहता है, जिनका बोझ उसे एक भी कदम आगे नहीं बढ़ने देता। इस बोझ को एक खाई के रूप में देखा जा सकता है, एक पर्वत सरीखे अवरोध के रूप में अनुभव किया जा सकता है, जो व्यक्ति के उत्कर्ष के पथ को अवरुद्ध किए रहता है।

इससे आगे बढ़ने के लिए एक ही मार्ग रह जाता है कि इस खाई को पाटा जाए, इस अवरोध को हटाया जाए और इसके अंतहीन कुचक्र से बाहर निकला जाए। इस बोझ के हलका होने के बाद ही, इस खाई को पाटने के बाद ही, इस अवरोध को समतल किए जाने के बाद ही वह धरातल तैयार हो सकेगा, जिस पर जीवन का नया भवन खड़ा किया जा सके।

जीवनरूपी खेत या बगिया में छाई खर-पतवार को साफ करने के बाद इसकी निराई-गुड़ाई एवं जुताई करने के बाद ही उर्वर भूमि में उम्दा बीजों को बोया जा सकेगा, जिससे कि नई फसल लहलहा सके। इसके लिए अपने चिंतन, चरित्र एवं आचरण-व्यवहार में घुसी पड़ी और जड़ जमाकर बैठीं दुष्प्रवृत्तियों के परिमार्जन, परिशोधन एवं परिष्कार के साहसिक कदम बढ़ाने होंगे। यह प्रायश्चित की प्रक्रिया है।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में शारीरिक और मानसिक दुष्प्रवृतियों के परिमार्जन का एकमात्र उपाय प्रायश्चित है। उसमें दंड भुगतने, क्षतिपूर्ति करने और भविष्य में वैसी गलती न करने के तीन तत्त्व घुले हुए हैं, जिनके सहारे भूल सुधारने और अंधकार को प्रकाश में बदलने का अवसर मिलता है। यह समाज, शासन या ईश्वरीय दंडविधान की प्रतीक्षा न करके स्वेच्छापूर्वक उस दंड को सहन करने का साहस है। वास्तव में मन का यह परिशोधन-परिष्कार समग्र स्वास्थ्य और आत्मोन्नति का मूल है।

यह एक प्रकार से रंगाई से पूर्व की धुलाई का कार्य है, जिसके बाद फिर साफ कपड़े पर नया रंग चढ़ाया जा सके। इसके लिए सबसे पहले अपनी यथास्थिति का बोध आवश्यक हो जाता है। इसके साथ अपने सुधार की अभीप्सा भी भीतर से उमगनी चाहिए, तभी यह संभव होता है अन्यथा व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं, कमियों, त्रुटियों एवं दोषों को

सही ठहराने के सौ बहाने एवं कुतर्क खोजता रहता है या फिर इनके अपेक्षित उपचार को लेकर टालमटोल करता रहता है। इससे बाहर निकलने के लिए व्यक्ति में पश्चात्ताप का भाव जगना आवश्यक है, तभी प्रायश्चित का कार्य स्वेच्छापूर्वक संभव हो पाता है।

इस तरह इसका शुभारंभ व्यक्ति की ईमानदार आत्म-स्वीकारोक्ति के साथ होता है, समझदारी और जिम्मेदारी के साथ आगे बढ़ता है तथा बहादुरी के साथ अपने निष्कर्ष तक पहुँचता है। अपनी पापवृत्ति या दुष्कर्म की सहर्ष स्वीकृति के बाद इसके अंतर्गत हुई क्षतिपूर्ति का साहसिक एवं उदार कदम उठाना पड़ता है। यदि धन का गबन किया है या भ्रष्टाचार में संलिप्तता रही है तो उसे ब्याज़सहित चुकाया जाता है।

अनीति से सफलता प्राप्त हुई है तो इसका परित्याग या परिमार्जन किया जाता है। जीवन को बोझिल बना रहे झूठे नाम, यश एवं प्रतिष्ठा का मोह त्यागना होता है और अपने श्रम से अर्जित ईमानदारी की कमाई में ही संतुष्ट रहना होता है। यदि अपने कर्त्तव्य का पालन सही ढंग से नहीं हो पाया है व कामचोरी, आलस्य-प्रमाद आदि में तामस कर्म हुए हैं तो अथक श्रम, मजगता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ इनका सुधार किया जाता है। साररूप में जाने-अनजाने में जो पापकर्म हुए हैं तो इनकी भरपाई पुण्यकर्मों के साथ तब तक की जाती है, जब तक कि इनका हिसाब-किताब बराबर न हो जाए।

इंद्रियों का असंयम, दुराचार यदि जाने-अनजाने में घटित हुआ है, नारीशक्ति का अपमान हुआ है तो पवित्र भाव के साथ अपने आचरण-व्यवहार को निभाते हुए आत्मशोधन किया जाता है। क्रोधवश दूसरों का अहित हुआ है या द्वेष-दुर्भाववश कुछ अवांछनीय कार्य हुए हैं तो सद्भाव का परिचय देते हुए अपने स्तर पर इनकी क्षतिपूर्ति की जाती है।

इस तरह से प्रायश्चित के अंतर्गत अपने दुष्कृत्यों के लिए स्वयं को ही दंड दिया जाता है तथा अपनी कुसंस्कारी मनोभूमि की अपने हाथों निराई-गुड़ाई व सफाई करते हुए इसे उर्वर बनाया जाता है। स्वेच्छापूर्वक उठाए गए प्रायश्चित के कदम के साथ ही चित्त का शोधन होता है। साथ ही जीवन में किए गए दुष्कर्मों का परिशोधन और अवांछनीय का निराकरण होता है।

इस मार्ग का अनुसरण करने से मानसिक ग्रंथियों में आबद्ध ऊर्जा मुक्त होती है और आत्मप्रगति का अवरुद्ध मार्ग खुलता है तथा जीवन गहन संतोष, शांति एवं आनंद से आप्लावित हो उठता है। ❑

**गुरु के समक्ष अपनी जिज्ञासा को अभिव्यक्त करते हुए शिष्य ने पूछा—''गुरुदेव! मनुष्य शक्तियों का भंडार है, फिर वह डूबता-गिरता क्यों है?'' गुरु ने इसके उत्तर में अपना कमंडलु पानी पर फेंक दिया और दिखाया कि वह ठीक प्रकार तैर रहा है। उन्होंने अपना कमंडलु दोबारा लिया और तली में छेद करके पुनः से फेंका तो वह डूब गया।**

**शिष्य की जिज्ञासा का समाधान करते हुए वे कहने लगे—''वत्स! असंयम के छेद हो जाने से व्यक्तित्व में दुर्गुण घुस पड़ते हैं और मनुष्य को डुबो देते हैं।'' अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहने लगे—''वत्स! गाय का दूध यदि छलनी में दुहा जाए तो वह जमीन पर गिरेगा, गंदगी उत्पन्न करेगा। गाय पालने का लाभ नहीं मिलेगा। लाभ तभी है, जब दुहने का पात्र बिना छेद का हो। इंद्रियशक्ति-मानसिक शक्ति को यदि कुमार्ग के छेदों से बहने दिया जाए तो मनुष्य की क्षमता इसी प्रकार समाप्त होकर रहेगी।'' गुरु के उपदेशों को सुन शिष्य संतुष्ट हुआ।**

चेतना की शिखर यात्रा – 229

# कुछ अदृश्य पन्ने

**विगत अंक में आपने पढ़ा कि तिब्बत के निकट स्थित महात्माओं की एक रहस्यमयी सिद्धस्थली से वायवीय शरीरधारी ए. ओ. ह्यूम सिद्ध महात्माओं के प्रतिनिधि के रूप में उनका संदेश लेकर शांतिकुंज स्थित पूज्य गुरुदेव के कक्ष में उनके समक्ष प्रस्तुत हुए। अपने आने का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए ह्यूम ने बताया कि वैश्विक उत्थान के लिए अनुष्ठान संपन्न कर रहे समस्त तपस्वीगण पूज्यवर से संवाद करने के इच्छुक हैं, अतः उनने अपने समक्ष उपस्थित होने का अनुरोध किया है। विश्वपटल पर विगत शताब्दी से लेकर वर्तमान समय सन् 1975 की गोपाष्टमी के दिन तक के परिवर्तन में प्रत्यक्ष-परोक्ष भूमिकाओं में रहे विभिन्न महात्माओं एवं महापुरुषों के विवरण समेत ह्यूम ने स्वयं अपने कार्यक्षेत्र को भी पूज्यवर के समक्ष उजागर किया। स्वामी विवेकानंद द्वारा लिखित एक पत्र की प्रतिलिपि पूज्य गुरुदेव को सौंपते हुए ह्यूम ने उन्हें इसे सिद्धमंडली के निर्देशानुसार उन तक पहुँचाए जाने का निर्देश बताया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण .....**

## भूमि पर रक्षा विधान

सन् 1973 से ही डॉक्टर साहब को प्रत्यक्ष और परोक्ष संकेत मिलने लगे थे कि अपना जीवन गुरुदेव के काम में लगाना है। चिकित्सा और शरीर विज्ञान की पढ़ाई चलती रहे। वह अध्ययन अलग तरह से काम आएगा। इस दिशा के साथ आत्मविद्या का संधान भी करते चलना है। गुरुदेव ने तीन-चार बार तो प्रत्यक्ष कहा कि यहाँ कब आ रहे हो? अभी मन बना या नहीं? डॉक्टर साहब हर बार 'हाँ' कहते और 'कब?' का उत्तर भी यही कि आप ही बताइए।

गुरुदेव ने अथवा नियति ने पता नहीं किस तरह शांतिकुंज बुलाने का निश्चय किया हुआ था। बुलाने की व्यवस्था के बारे में गुरुदेव से ही पूछते तो वे चुप रह जाते। उनका मौन और संकेत यही उत्तर देते दिखाई देते कि आने की विधि और उसका क्रियान्वयन तुम खुद ही चुनो। करीब तीन साल तक संकेत, निर्देश और आदेश के साथ साधक की ओर से स्वीकृति, तत्परता और अनुपालन की तैयारी दिखाई देती।

तीन साल तक अलग-अलग तरह से इन्हीं बिंदुओं के इर्द-गिर्द गतिविधियाँ चलती रहीं। सन् 1976 के शुरुआती महीनों में डॉक्टर साहब हरिद्वार आए। आए क्या गुरुदेव ने ही बुलाया। लेकिन अपने लिए सर्वतोभावेन काम करने वाले कार्यकर्त्ता के रूप में कम, युग-साधना को समर्पित साधना करने वाले साधक के रूप में ज्यादा।

डॉक्टर साहब को सार्वजनिक उपक्रम भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स में चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्ति मिली। बीएचईएल परिसर में बने अस्पताल के डॉक्टर्स क्वार्टर्स में ही निवास की व्यवस्था हो गई। नियुक्ति तक तो गुरुदेव-माताजी ने कुछ नहीं कहा। रहने की व्यवस्था होने लगी तो उन्होंने सख्ती से मना किया। कहा कि शांतिकुंज का रहन-सहन कष्टकर जरूर है। यहाँ तुम्हें निवास के लिए एक कमरा ही मिलेगा, पर युग-साधना का अभ्यास करना है तो बीएचईएल रहने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

डॉक्टर साहब ने कुछ नहीं कहा। असमंजस रहा कि क्या तय करें, अगर युगसाधक के रूप में ही पूरा समय लगाना है तो चिकित्सा अधिकारी के रूप में काम क्यों करना पड़ रहा है? गुरुदेव ने वहाँ नौकरी ज्वाइन करने के लिए मना क्यों नहीं किया। चेहरे पर उभर रहे इन सवालों को गुरुदेव ने पढ़ लिया। वे बोले—"समय आने पर उसके लिए भी मना हो जाएगी। नियंता स्वयं तुम्हें आदेश बता देंगे।"

बीएचईएल के क्वार्टर्स में रहने की बात वहीं समाप्त हो गई। निवास के लिए शांतिकुंज अपने निवास या कक्ष में

डॉक्टर साहब सुबह-सुबह तैयार होकर अस्पताल के लिए निकलते और देर शाम तक वापस लौटते। प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्त में उठने और आश्रम की निर्धारित दिनचर्या के अनुसार यहाँ आरती में भाग लेने का नियम भी निभता। ड्यूटी पर जाने के लिए शुरू में तो कुछ दिन सार्वजनिक परिवहन का उपयोग किया। फिर लंब्रेटा कंपनी का एक स्कूटर इंदौर से मँगवा लिया।

अस्पताल में डॉक्टर साहब को काम करते देख कुछ समय तक तो साथी-सहकर्मियों ने शांतिकुंज का जिक्र किया। वहाँ के वातावरण, गुरुदेव माताजी के आध्यात्मिक स्तर के बारे में पूछते और सुनते हुए सहयोगियों को अच्छा लगता। डॉक्टर साहब के काम-काज और चिकित्सा कौशल का धीरे-धीरे परिचय हुआ तो फिर बातचीत के नए विषय भी जुड़े। जाहिर है वे स्वास्थ्य, चिकित्सा, रोग और शरीर की व्यवस्था से संबंधित ही थे। उन विषयों में अध्यात्म का पुट भी रहता।

बीएचईएल में काम करते हुए कुछ माह बीते होंगे कि अदृष्ट ने एक दुर्घटना की रचना की। गुरुदेव और माताजी उन दिनों सायंकालीन भ्रमण के लिए जाया करते थे। उनका रिक्शा चलाने वाला चालक मोती बड़ी भावना से उन्हें हर की पौड़ी या उससे आगे बाजार तक ले जाता। भ्रमण के लिए ऋषिकेश रोड का मार्ग ही चुनते। सन् 1976 में अगस्त महीने की 28 तारीख थी।

उस दिन रिक्शा मुश्किल से दो किलोमीटर चला होगा कि गुरुदेव ने रुकने के लिए कहा। जिस जगह रिक्शा रुका, वहाँ पास ही बिरला जी की बगीची (अब यहाँ जैन मंदिर है) थी। गुरुदेव रिक्शे से उतरे और बगीची तक होकर वापस लौट आए। माताजी रिक्शे में ही बैठी रहीं। गुरुदेव को इस तरह आते-जाते देख उन्हें कुछ असहज लगा। उन्होंने पूछा—"क्या बात है साहब? कुछ भूल रहे हैं क्या या आज आगे जाने का मन नहीं है?"

वापस लौटते हुए गुरुदेव पुलिया पर बैठ गए। माताजी कुछ समझ नहीं पा रही थीं। कहने लगी—"मन नहीं है तो वापस चलते हैं साहब। फिर कल देखेंगे।" गुरुदेव इस बार भी कुछ नहीं बोले। वे आस-पास की जगह गौर से देख रहे थे। नजरें ऐसे घूम रहीं थीं, जैसे कुछ पढ़ रही हों या लकीरें खींच रही हों। पाँच, सात मिनट वे इसी तरह चहलकदमी करते, पुलिया पर बैठते और आस-पास की जगह निरखते रहे। माताजी उन्हें यह सब करते हुए अपलक देख रहीं थीं। उस जगह सभी ओर देख-भाल कर, चहलकदमी कर गुरुदेव रिक्शे के पास आए और बोले—"चलो मोती, अब आगे नहीं जाएँगे।"

## एक ही जीवन में दूसरा जन्म

माताजी ने इस पर कुछ नहीं कहा। वे चुप रहीं। रिक्शा कुछ आगे बढ़ा तो गुरुदेव उस जगह के संस्कार आदि के बारे में बताते हुए सामान्य विषयों पर कुछ कहने लगे। दोनों शांतिकुंज वापस पहुँचे। वापसी के बारे में वहाँ किसी ने कुछ नहीं पूछा और बताया। मुख्यद्वार के पास खड़े कुछ कार्यकर्त्ता जरूर आश्चर्य से देखने लगे कि गुरुदेव माताजी इतनी जल्दी वापस कैसे आ गए। कुछ ही पलों में वे इस बात को भी भूल गए।

ऊपर जाने के कुछ ही देर बाद गुरुदेव फिर वापस आ गए। ऐसा कम ही होता था कि कहीं से लौटने के बाद गुरुदेव अपने कक्ष में चले गए हों और फिर वहाँ से लौटे हों। गेट के पास आकर वे चहलकदमी करने लगे। वहाँ आस-पास मौजूद कार्यकर्त्ताओं से कुछ बातचीत भी की। इसी बीच गेट के पास उत्तर प्रदेश सड़क परिवहन निगम की एक बस आकर रुकी। ड्राइवर ने दरवाजा खोला और धम्म से कूदा। गेट से उतरते ही उसने आवाज लगाई—"ओ साहब जी! मदद करो, डॉक्टर साहब को गाड़ी से नीचे उतारो।"

गुरुदेव ने सुना ही था कि कार्यकर्त्ताओं को आवाज लगाई। गाड़ी प्रणव को लेकर आई है। एक्सीडेन्ट हो गया है, जल्दी से उसे नीचे उतारो। वहाँ मौजूद कार्यकर्त्ता दौड़े। उन्होंने बस की सीट पर सँभालकर लिटाए गए डॉक्टर साहब को नीचे उतारा। ड्राइवर ने भी हाथ बँटाया। वह कहता जा रहा था...."बहुत नेक और रहमदिल डॉक्टर हैं, उन्होंने मेरा जीवन बचाया है। हमारे डॉक्टर साहब हैं, उन्हें कुछ नहीं होगा।"

नीचे उतारकर डॉक्टर साहब को भीतर ले जाया गया। आस-पास जो चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध थी, उसका प्रबंध किया। वहाँ मौजूद डॉक्टरों ने डॉक्टर साहब की चोटें देखकर कहा कि नुकसान दिखाई नहीं दे रहा है, लेकिन दुर्घटना बहुत घातक हुई है। चोटें भीतरी हैं। वहाँ मौजूद डॉक्टरों की राय से ही डॉक्टर साहब को बीएचईएल अस्पताल में भरती कराया। प्राथमिक जरूरी चिकित्सा तो हुई, लेकिन डॉक्टरों ने यह भी कहा—"इलाज यहाँ न कराएँ, साधन

नहीं हैं। बेहतर होगा कि दिल्ली ले जाएँ।'' गुरुदेव भी अस्पताल तक साथ आए थे। दिल्ली ले जाने की सलाह देने पर उन्होंने कहा—''दिल्ली नहीं, भोपाल ले जाओ और सुनो किसी को चिंता करने की जरूरत नहीं है।''

जीजी उन दिनों इंदौर में ही रह रहीं थीं। उन्हें और बाई (माँ) तथा पिताजी को पता चला तो तीनों पहली गाड़ी से दौड़े चले आए। तब तक डॉक्टर साहब को चिकित्सकों की देख-रेख में भोपाल ले जाया जा चुका था। ले जाते समय गुरुदेव ने वीरेश्वर जी को साथ कर दिया। कहा कि उपचार होने तक और वापस ठीक होकर यहाँ आने तक प्रणव के साथ ही रहना। घटना के दस दिन बाद 7 सितंबर को भोपाल में डॉक्टर साहब का ऑपरेशन हुआ।

करीब तीन सप्ताह वहीं रहे और वापस लौटे तो लगा कि रोम-रोम में नया जीवन संचरित हो रहा है। शांतिकुंज आते ही वे गुरुदेव के पास प्रणाम के लिए पहुँचे। गुरुदेव ने सिर पर हाथ फेरा और कहा—''मैं अब कह सकता हूँ कि तुम्हें कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है, न ही कोई नौकरी करना है। दो साल से भगवान का काम करने के लिए कहता रहा, पर मुझे लगता था कि यह शायद नए जीवन में ही संभव हो सकेगा। उसके लिए फिर से जन्म लेने तक इंतजार करना पड़ता, लेकिन महाकाल ने तुम्हें यहीं नया जीवन दे दिया।''

गुरुदेव ने जब यह कहा तो डॉक्टर साहब की स्मृतियों में वे दृश्य उभर आए, जो भोपाल में चिकित्सा उपचार के दौरान दिखाई दिए थे। गुरुदेव, माताजी, अखंड दीपक, हिमालय, दादागुरु, सूक्ष्मलोक में गूँजता गायत्री मंत्र और स्वयं के वाचक शब्द (ॐ) की ध्वनि। याद भी नहीं आ रहा था कि शरीर के किस-किस हिस्से की अस्थियाँ, शिराएँ और मज्जाएँ चरमराई थीं। स्वस्थ, सबल, सक्षम और उद्देश्यपूर्ण नया जीवन राह देख रहा था। (क्रमशः)

**लोमश ऋषि ने अपने पुत्र शृंगी को अपने से भी उच्चकोटि का ऋषि बनाने के लिए उनकी शिक्षा-साधना के अतिरिक्त आहार-विहार का विशेष रूप से संरक्षण किया। उन्हें आश्रम में उत्पादित अन्न-फल ही खिलाए जाते। नारी का संपर्क तो दूर, उसके संबंध में उन्हें जानकारी तक नहीं होने दी। राजा दशरथ और ऋषि वसिष्ठ ने जब यह सुना तो वे इस प्रबल अनुशासन की परीक्षा लेने गए। अप्सराओं के हाथों मिष्टान्न भेजा। शृंगी ने नारियाँ कभी देखी न थीं, सो उनका परिचय पूछा। उत्तर मिला—''हम भी ब्रह्मचारी विद्यार्थी हैं। हमारा गुरुकुल शीतप्रधान देश में है। सो बड़ी आयु तक दाढ़ी-मूँछ नहीं आतीं। प्राणायाम अधिक करने से हमारे सीने चौड़े हो जाते हैं। अप्सराओं ने शृंगी को मिष्टान्न दिए और कहा—''यह हमारे आश्रम के फल हैं।'' शृंगी ने उनकी बात अक्षरशः सही मानी और पिता को सारा विवरण बताया। लोमश यह कुछ देखने बाहर आए तो अप्सराओं के साथ दशरथ और वसिष्ठ खड़े दिखे। वसिष्ठ द्वारा हेतु बताया गया कि दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराने योग्य शक्तिवान वाणी इन दिनों शृंगी ऋषि की है। कालांतर में शृंगी ऋषि के द्वारा जो यज्ञ हुआ, उससे चार राजकुमार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में ऐसे जन्मे, जिन्होंने इतिहास को धन्य कर दिया।**

# जल संकट की भीषण चुनौती

सन् 2010 में महाराष्ट्र का औरंगाबाद जिला तब सुर्खियों में आया था, जब वहाँ एक ही दिन में 65 मर्सीडिज बेंज लक्जरी कार का ऑर्डर देने का रिकॉर्ड बना था। यहाँ से एक ही बार में 150 करोड़ रुपये का ऑर्डर दिया गया था, मगर आज यह जिला एक अलग ही तरह की बढ़ती हुई माँग का गवाह बन गया है और वह चीज है वाटर टैंकर।

हिंदुस्तान टाइम्स की एक रिपोर्ट के अनुसार मई के पहले सप्ताह में जून से तीसरे सप्ताह तक जिले में वाटर टैंकर की माँग दुगनी हो जाती है। अगर मुंबई को छोड़ दिया जाए तो महाराष्ट्र में पानी की सर्वाधिक माँग औरंगाबाद जिले में होती है। यहाँ, जहाँ एक ओर निजी संपत्ति के बढ़ने के समाचार होते हैं तो वहीं दूसरी ओर पारिस्थितिकीय संकट के गहराने की कथा।

यह सूचक है कि व्यापक भारतीय विकास किस रूप में हो रहा है? यह आर्थिक विकास और पर्यावरण विनाश के बीच का संघर्ष है, जिसमें जल का अभाव एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। ऐसा तो होगा ही, यह मान लिया गया है। विश्व बैंक के आँकड़ों का इस्तेमाल करके अगर हम भारत की चीन से तुलना करें तो यह बात प्रमाणित हो जाती है।

सन् 1962 में भारत में प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (सन् 2010 के डॉलर मूल्य के आधार पर) चीन से दुगना ज्यादा था। साफ जल की बात करें तो भारत में प्रतिव्यक्ति जल की उपलब्धता चीन की तुलना में 75 प्रतिशत थी। सन् 2014 तक आते-आते यह उपलब्धता चीन की तुलना में 54 प्रतिशत हो गई। गौर कीजिए सन् 2014 में चीन का प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद भारत से 3.7 गुना ज्यादा हो चुका था।

ये आँकड़े स्पष्ट रूप से बताते हैं कि विगत वर्षों में भारत में प्रतिव्यक्ति जल-उपलब्धता लगातार घट रही है। वार्षिक आधार पर देखें तो सन् 1980 के दशक तक भारत में प्रतिव्यक्ति जल-उपलब्धता प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत से भी ज्यादा की दर से घट रही थी। सन् 2012 और 2014 के बीच यह सुधरकर 1.2 प्रतिशत हुई, लेकिन इस मोर्चे पर भी चीन बहुत अच्छा कर रहा है।

चीन इस सदी के प्रारंभ से ही प्रतिव्यक्ति जल-उपलब्धता की प्रतिवर्ष कमी दर को 1 प्रतिशत से भी कम रख पा रहा है। ऐसा करते हुए भी वह आज भारत से ज्यादा तेज गति से अपनी प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद दर में वृद्धि कर पा रहा है। दोनों देशों के बीच आर्थिक विकास और जल-उपयोग का यह अंतर क्या बताता है?

आमतौर पर शहरी क्षेत्रों में होने वाला जल संकट हमारा ध्यान खींचता है; जबकि भारत और अन्य देशों में भी बड़ी मात्रा में जल का उपयोग कृषि-क्षेत्र में होता है। इस संदर्भ में जो पिछले आँकड़े उपलब्ध हैं, उनके अनुसार सन् 2010 में भारत में शुद्ध जल का 90 प्रतिशत हिस्सा कृषि कार्य में इस्तेमाल हुआ था। यहाँ तक कि चीन में भी जहाँ सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की हिस्सेदारी भारत की तुलना में आधी है—वहाँ भी 64 प्रतिशत शुद्ध जल का इस्तेमाल कृषि में हुआ है।

ऐसे में यह अपेक्षित ही है कि देश के जल संसाधन में ह्रास की गति कृषि-उत्पादन में जल के कुशल प्रयोग पर बहुत हद तक निर्भर है। कृषि के क्षेत्र में जल का सदुपयोग नहीं हो रहा है—यह भारत में बढ़ते जल संकट का मुख्य कारण है। एक साधारण गणित से इस बात को समझा जा सकता है।

विश्व बैंक के आँकड़े हमें किसी देश के लिए प्रतिलीटर जल से कृषि-उत्पाद को आँकने की सुविधा प्रदान करते हैं। भारत में सन् 2010 में कृषि के क्षेत्र में प्रतिलीटर शुद्ध जल-उपयोग से कृषि के सकल घरेलू उत्पाद का 0.5 डॉलर का उत्पादन हुआ; जबकि चीन में सन् 2007 में 1.4 डॉलर और सन् 2012 में 1.6 डॉलर का उत्पादन हुआ।

जल के सदुपयोग के मामले में सफल देश के रूप में देखे जाने वाले इजरायल ने इतने ही पानी से 3.9 डॉलर का

उत्पादन किया। यह बात ज्यादा चिंताजनक है कि पिछले तीन दशकों में भारत में प्रतियूनिट जल से कृषि-उत्पादन में वास्तव में कोई वृद्धि नहीं हुई है।

भारतीय कृषि में जल अक्षमता को विगत तीन दशकों में ट्यूबवेल उपयोग के विस्तार से भी समझा जा सकता है। सन् 1960-61 में ट्यूबवेल द्वारा सिंचित क्षेत्र का हिस्सा मात्र 0.5 प्रतिशत था। सन् 1969-70 में यह हिस्सा बढ़कर 10 प्रतिशत और सन् 2014-15 में बढ़कर 33 प्रतिशत के आस-पास पहुँच गया।

ट्यूबवेल के इस्तेमाल के साथ ही जल का दुरुपयोग व अपव्यय भी बढ़ा है। ट्यूबवेल के ज्यादा इस्तेमाल से दो अन्य मोर्चों पर भी नुकसान हुआ है। एक तो इससे भू-जल स्तर बहुत गिर गया है। दूसरा इसने किसानों को ऐसी फसलों के लिए भी प्रेरित किया है, जो परिवेश के अनुकूल नहीं मानी जातीं। नतीजा यह निकल रहा है कि मिट्टी में लवणता की मात्रा बुरी तरह से बढ़ रही है।

दूरगामी रूप से इस तरह की खेती नुकसानदायक ही सिद्ध हो रही है। इसके अलावा किसान ट्यूबवेल पंप चलाने के लिए सब्सिडी वाली बिजली का इस्तेमाल करते हैं। परिणामस्वरूप ज्यादातर राज्य विद्युत बोर्ड भारी घाटे में चल रहे हैं, जिससे राज्य सरकारों का राजस्व घाटा बढ़ रहा है।

आँकड़े गवाह हैं कि भारतीय राज्यों ने दूसरे देशों की तुलना में फसलों के उत्पादन में ज्यादा जल खरच किया है। सबसे ज्यादा चिंता की बात यह है कि ज्यादा जल खरच से उत्पादित कृषि वस्तुओं का निर्यात कर दिया जाता है। देखा जाए तो यह वास्तव में जल का निर्यात है।

भारत में तो नदी-क्षेत्र वाले इलाकों में भी जलाभाव देखा जा रहा है। साल के ज्यादातर महीनों में जल की माँग और जल की आपूर्ति में बड़ा अंतर कायम रहता है। कुल मिलाकर भारत में जल संकट नई बात नहीं है। अपने देश में कमजोर बारिश की जो स्थिति है, वह आने वाले वर्षों में देश के अनेक इलाकों में जल संकट बढ़ा सकती है।

महाराष्ट्र के गाँवों से लेकर चेन्नई जैसे शहरों तक बड़ी जनसंख्या को पेयजल उपलब्ध कराना अब एक चुनौती बन गया है। कृषि में जल संकट का केंद्रीय महत्त्व है, लेकिन दूसरे क्षेत्रों में जल की माँग को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

सन् 2015-16 में किए गए चौथे राष्ट्रीय परिवार एवं स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार पेयजल आज भी ज्यादातर भारतीयों के लिए दुर्लभ बना हुआ है। केवल 30 प्रतिशत भारतीयों तक पेयजल पाइप द्वारा पहुँचता है।

ग्रामीण इलाकों में तो 20 प्रतिशत लोगों तक भी जलापूर्ति सुविधा नहीं पहुँची है। सर्वेक्षण के अनुसार 51 प्रतिशत ग्रामीण घरों में ट्यूबवेल और बोरवेल के जरिए ही पेयजल उपलब्ध होता है। स्थिति और भी चिंताजनक तब हो जाती है, जब घर में पहुँचाए जा रहे पेयजल की शुद्धता पर भी लोग विश्वास नहीं करते और इसके लिए वैकल्पिक माध्यमों को तलाशते हैं। इस वजह से भी जल की बड़ी बरबादी होती है।

आर.ओ. वाटर फिल्टर का इस्तेमाल भी इन दिनों बढ़ रहा है; जबकि आर.ओ. मात्र एक-चौथाई पानी को ही पीने के लिए उपलब्ध कराता है, बाकी पानी बहाकर बरबाद कर देता है। यदि भारतीय घरों में शुद्ध जल की आपूर्ति होती और लोग उस पर विश्वास करते जैसा कि तमाम विकसित देशों में होता है तो पेयजल की खपत में भी भारी कमी आ जाती।

ट्यूबवेल या आर.ओ. का बढ़ता इस्तेमाल संकेत करता है कि भारतीय राज्य व्यवस्था विश्वसनीय जल वितरण प्रबंध विकसित करने में नाकाम रही है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि गुरुग्राम और नोएडा जैसे अनेक बाहरी शहरों में जलापूर्ति के सामुदायिक तंत्र के बिना ही कॉलोनियाँ विकसित होने दी जा रही हैं। भू-जल पर निर्भरता बढ़ रही है, जिससे जल संकट लगातार बढ़ रहा है।

किसानों और अन्य लोगों पर ट्यूबवेल प्रयोग रोकने और कृषि में जल के अपव्यय रोकने के लिए कोई राजनीतिक पार्टी दबाव डालेगी, ऐसी कल्पना भी मुश्किल है। निस्संदेह जल संकट से उबरने के लिए व्यवहार में बदलाव लाना होगा। नीति आयोग के अध्ययन के अनुसार सन् 2030 तक आपूर्ति की तुलना में जल की माँग दुगनी ज्यादा हो जाएगी। इसकी वजह से भयानक जल संकट और आर्थिक नुकसान होगा।

कहना न होगा यदि स्थितियों को और बिगड़ने से रोकने के लिए तत्काल व कारगर कदम नहीं उठाए गए तो यह संकट और बढ़ जाएगा। इसलिए समय रहते इस दिशा में सार्थक प्रयास की जरूरत है। ❑

# जीवनमूल्यों का संकट

जीवनमूल्य वे गुण एवं विशेषताएँ हैं, जो एक व्यक्ति के जीवन को, बहुमूल्य बनाते हैं। परिवार और समाज को सुसंस्कृत तथा राष्ट्र को समुन्नत एवं श्रेष्ठ ये ही जीवनमूल्य बनाते हैं। पूरे विश्व में सुख-शांति एवं सौहार्द का ये ही सशक्त माध्यम हैं। मनुष्य के जीवन को जो श्रेष्ठ एवं मूल्यवान कहा गया है, उसका आधार जीवनमूल्य ही हैं।

इनके क्षीण होते ही मनुष्य अपने जीवन की चमक को खो बैठता है, अपने मूल उद्देश्य से भटक जाता है और उसे सामान्य इनसान से पशु, पिशाच, असुर, राक्षस जैसे निम्न स्तर तक गिरने में देर नहीं लगती। इसी के साथ परिवार, समाज, राष्ट्र एवं मानवता का विघटन भी प्रारंभ हो जाता है।

वर्तमान संक्रमण के ऐतिहासिक पलों में मानवीय सभ्यता जीवनमूल्यों के गंभीर संकट से होकर गुजर रही है। एक ओर जहाँ इसका चिरस्थापित ढाँचा चरमरा रहा है तो वहीं दूसरी ओर इसके उभार का आशा भरा स्वरूप भी सामने दिख रहा है।

कोरोनाकाल में इसके दोनों पक्षों के दर्शन खुलकर हुए हैं। एक ओर कोरोना के मोर्चे पर चिकित्सक, सफाई व सुरक्षाकर्मी, नेता, समाजसेवी स्वयंसेवक से लेकर कई संगठन अपना निष्काम एवं निस्स्वार्थ योगदान देते नजर आए तो वहीं दूसरी ओर जीवनरक्षक दवाइयों से लेकर ऑक्सीजन सिलेंडर की कालाबाजारी एवं जीवन-मरण के संघर्ष से जूझ रहे रोगियों के साथ खिलवाड़ करते कुछ अमानुषिक नकाबपोश भी दिखाई पड़े।

एक ओर जहाँ दूसरों की रक्षा के लिए अपनी जान पर खेलकर बचाने की मिसालें पेश होती रहीं तो वहीं कुछ मौत के सौदागर बनकर पीड़ितों की जान के साथ खिलवाड़ कर मनुष्यता को शरमसार करते रहे। ये जीवनमूल्य वास्तव में जीवन की समझ एवं जीवनशैली के आधार पर तय होते हैं। वैदिक ऋषियों से लेकर हर युग में मनीषियों ने जीवन के दो मार्ग बताए हैं—श्रेय अथवा प्रेय।

एक अहंकार एवं स्वार्थकेंद्रित सांसारिक भोग एवं अपने सुख या लाभ का मार्ग है तो दूसरा संयम, सेवा, त्याग से भरा पारमार्थिक जीवन एवं आत्मकल्याण का मार्ग है। व्यक्ति की आस्था, विश्वास के आधार पर ही दो व्यक्तियों के जीवन की ये विभिन्न दिशाधाराएँ तय होती हैं।

भारतीय परंपरा में धर्म के रूप में मूल्यों की चर्चा शास्त्रों में पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत हुई है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म को ही जीवन की केंद्रीय धुरी माना जा सकता है।

मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं—

**धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीः विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥**

*—6.12*

अर्थात धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध के रूप में धर्म का प्रतिपादन किया गया है।

इस रूप में धर्म वैदिक मान्यता के अनुसार जगत् को धारण करता है और मानवीय मूल्यों की रक्षा करता है—

**धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः॥**

साथ ही यह भी कहा गया कि—

**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**
**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्॥**

अर्थात जो पुरुष धर्म का नाश करता है, धर्म उसी का नाश कर देता है और जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी धर्म भी रक्षा करता है, इसलिए मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले इस भय से धर्म का हनन अर्थात त्याग कभी न करना चाहिए। इस तरह धर्म की रक्षा अर्थात जीवनमूल्यों की रक्षा का महत्त्व समझा जा सकता है। इसी के साथ यह जीवन को अजेय आधार भी देता है। जब भगवान राम रावण से युद्ध के लिए रणक्षेत्र में उतरे तो विभीषण को शंका हुई कि रावण की मायावी सेना और रथ का सामना भगवान श्रीराम पैदल ही कैसे कर पाएँगे। तब गोस्वामी तुलसीदास ने धर्ममय रथ की उक्ति के रूप में अजेय रथ की बात कही।

**सुनहु सखा कह कृपानिधाना।**
**जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥**
**सौरज धीरज तेहि रथ चाका।**
**सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥**
**बल बिबेक दम परहित घोरे।**
**छमा कृपा समता रजु जोरे॥**
**ईस भजनु सारथी सुजाना।**
**बिरति चर्म संतोष कृपाना॥**
**दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।**
**बर बिज्ञान कठिन कोदंडा॥**
**अमल अचल मन त्रोन समाना।**
**सम जम नियम सिलीमुख नाना॥**
**कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा।**
**एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥**
**सखा धर्ममय अस रथ जाकें।**
**जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥**
**महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।**
**जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥**

रामचरितमानस की इन पंक्तियों में धर्ममय रथ के साथ उन मानवीय मूल्यों का सुंदर एवं विशद् विवेचन मिलता है, जो जीवन के रणक्षेत्र में व्यक्ति के लिए अजेय पराक्रम का आधार प्रस्तुत करते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार शास्त्रों में धर्म के कई लक्षण गिनाए गए हैं। वर्तमान संदर्भ में ये लक्षण इस तरह से कहे जा सकते हैं—सत्य, विवेक, संयम, कर्त्तव्यपरायणता, अनुशासन, आदर्शनिष्ठा-व्रतशीलता, स्नेह-सौजन्य, पराक्रम-पुरुषार्थ, सहकारिता और परमार्थ-उदारता—ये ही वास्तव में जीवन को सफल-सार्थक बनाने वाले जीवनमूल्य हैं और समाज को समग्र विकास एवं उत्थान की ओर ले जाने वाले स्वर्णिम सूत्र भी ये ही हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में इन जीवनमूल्यों को अपनाकर ही मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता और मनुष्यता के आवश्यक सद्गुणों से संपन्न होता है। इन गुणों से संपन्न आध्यात्मिकता ही वह एकमात्र मार्ग है, जिस पर चलते हुए मनुष्य को सर्वांगीण उत्कर्ष प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है और आत्मा को परमात्मा से मिलने का अवसर प्राप्त होता है।

नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, अणु से विभु, लघु से महान बनने का एक ही उपाय है कि अपनी तुच्छताओं, संकीर्णताओं, दुर्बलताओं की बेड़ियाँ काट डाली जाएँ और महानता के उन्मुक्त आकाश में विचरण किया जाए। किसी ने सही ही कहा है कि मूल्यबोध का मर जाना विश्वयुद्ध की विनाशलीला से कम भयानक नहीं।

मूल्यबोध का क्षरण राष्ट्र की आत्मा का क्षीण हो जाना है। जीवनमूल्यों के अभाव में राष्ट्रीय चरित्र धूमिल पड़ जाता है। भारत की गुलामी की दास्तान वास्तव में ऐसे ही राष्ट्रीय जीवन के दुर्बल एवं बिखरे पलों में लिखी गई थी, जब मुट्ठी भर आक्रांता समूचे राष्ट्र पर भारी पड़ गए थे।

आज यदि हमें देशभक्ति का परिचय देना है तो यह समय जीवनमूल्यों के लिए तनकर खड़े होने का समय है। जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह राजनीति हो या धर्म, व्यापार हो या प्रशासन, सैन्य क्षेत्र हो या कला-साहित्य एवं दर्शन, धर्म हो या अध्यात्म, शिक्षा हो या प्रबंधन, पत्रकारिता हो या कृषि, विज्ञान एवं तकनीकी हो या चिकित्सा—जीवन के हर क्षेत्र में जीवनमूल्यों का संरक्षण, संवर्द्धन एवं स्थापना समय की माँग है।

अंधे लोभ, झूठी प्रतिष्ठा एवं भौतिक चमक से ऊपर उठकर आज का समय हमारे लिए अपने अंदर गहनता से, ईमानदारी से निहारने का है। धर्महीन एवं मूल्यहीन पड़े व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में मूल्यों की संजीवनी को फूँकने का है।

कोरोनाकाल ने जीवन के हर क्षेत्र में यथास्थिति से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं मानवता को भली भाँति आइना दिखाते हुए परिचित करवा दिया है। चारों ओर समस्याओं, न्यूनताओं, विषमताओं व विकृतियों का अंबार है। इस दौर में हमें जीवनमूल्यों के साथ खड़े होकर समस्या के बजाय समाधान का हिस्सा बनना है।

अंधकार में लाठी भाँजने के बजाय प्रकाश का दीया बनकर जलना है और यदि हम समाधान का सक्रिय हिस्सा नहीं बन सकते तो कम-से-कम इसके लिए कामना एवं प्रार्थना तो कर ही सकते हैं। अपनी जीवन-दृष्टि एवं जीवनशैली को परिमार्जित करते हुए हम सभी इस सृजनात्मक, आध्यात्मिक अभियान में अपना न्यूनतम सहयोग, समर्थन एवं योगदान तो अवश्य दे ही सकते हैं। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार– 150

# हाथों का उपयोग और व्यक्तित्व

हमारी शारीरिक संरचना में हाथों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। दैनिक जीवन में इन्हीं की सहायता से हम सुगमतापूर्वक सभी क्रियाकलापों को संपन्न कर पाते हैं, लेकिन इनके उपयोग में कोई दाएँ हाथ का प्रयोग ज्यादा करता है तो कोई बाएँ हाथ का। जनसामान्य की धारणाओं में भी दाएँ हाथ से कुछ विशेष कार्य करने व इसका अधिक उपयोग करने वालों को बाएँ हाथ वालों की तुलना में ज्यादा अच्छा समझा जाता है। हमारे समाज में लिखने, खाने जैसे कई कार्यों में यदि बच्चा बाएँ हाथ का प्रयोग करे तो उसको गलत समझकर सुधार करने के प्रयास कई बार देखे जाते हैं।

इसी तरह बाएँ हाथ वालों के लिए भी कुछ धारणाएँ प्रचलित हैं। जैसे कि लोगों में मान्यता है कि बाएँ हाथ का उपयोग करने वाले की बौद्धिक क्षमता, गणित, तर्क शक्ति दाएँ हाथ वालों की तुलना में ज्यादा अच्छी होती है। वे प्रतिभाशाली होते हैं। साथ ही कुछ विशेष प्रकार की शारीरिक व मानसिक समस्याओं के लिए भी बाएँ हाथ वालों में संवेदनशीलता ज्यादा होने की बात कही जाती है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों ने इस दिशा में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाशित किया है, जिनके आधार पर यह सिद्ध होता है कि दाएँ अथवा बाएँ हाथ के उपयोग का संबंध हमारी मस्तिष्कीय संरचना एवं आनुवांशिक व जैविक घटकों से संबंधित है, जिसका सीधा असर व्यक्तित्व के लक्षणों और कुछ समस्याओं के रूप में दिखाई देता है। दाएँ अथवा बाएँ हाथ के प्रयोग के व्यक्तित्व की विशेषताओं व मनोविकृतियों से संबंध को लेकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

इसमें हाथों के उपयोग से जुड़ी धारणाओं से हटकर वैज्ञानिक तथ्यों व प्रयोग के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया गया है कि हाथों के उपयोग के निर्धारण में जीवन के कौन से घटक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और इनका संपूर्ण जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इस विशिष्ट शोध अध्ययन को वर्ष-2016 में शोधार्थी नूपुर जायसवाल द्वारा विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत पूरा किया गया है। यह शोध विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ. अनुराधा कोटनाला के निर्देशन में संपन्न किया गया है।

इसका विषय है—**'पर्सनल्टी ट्रेट्स एंड साइकोपैथालॉजी एज कोरिलेट्स ऑफ हेण्डेडनेस।** इस शोधकार्य के प्रयोग को पूरा करने के लिए शोधार्थी द्वारा कोटा चयन विधि के माध्यम से पूरे भारत देश से कुल 105 लोगों का चयन किया गया, जिनकी उम्र 18 से 45 वर्ष के बीच थी। सभी चयनित लोगों से तीन समूह का निर्माण किया गया, जिसमें प्रथम लोगों का समूह 35 दाएँ हाथ के उपयोग वाले थे। द्वितीय बाएँ हाथ वाले 35 लोग थे एवं तृतीय समूह में ऐसे 35 लोगों को सम्मिलित किया गया था, जो समान रूप से दोनों हाथों का उपयोग करते थे।

शोध प्रयोग में परीक्षण के लिए जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया; वे हैं—व्यक्तित्व परीक्षण प्रश्नावली स्वनिर्मित एवं रोर्शाक इंकब्लाट परीक्षण। व्यक्तित्व लक्षणों को ज्ञात करने के लिए शोध में गुणों एवं विशेषताओं के आधार पर पाँच बिंदुओं का निर्धारण किया गया है। ये पाँच बिंदु हैं—

(1) खुलापन—अर्थात स्पष्टवादिता के भावों का प्रदर्शन, रोमांचक कार्यों में भागीदारी, विचार, कल्पना और अनुभवों की बहुलता, सादगी आदि।

(2) सजगता या चेतनता—इसमें व्यक्ति की स्व-अनुशासन और अनुभूति क्षमता आदि देखे जाते हैं।

(3) बहिर्मुखता—इसमें बाह्य जगत से संबंधों, सकारात्मक भावनाओं का प्रदर्शन, दूसरों को प्रेरित करने जैसे व्यक्तित्व के गुण सम्मिलित किए गए हैं।

(4) सहमतता या साथियों के साथ कार्यों में तालमेल बनाना, अन्यों के अच्छे एवं उद्देश्यपूर्ण कार्यों में सहमति व्यक्त करना।

(5) मनोविक्षुब्धता—इस व्यक्तित्व लक्षण में नकारात्मक भावनाओं के अनुभवों; जैसे क्रोध, चिंता, अवसाद, भावनात्मक अस्थिरता आदि गुणों को सम्मिलित किया गया है।

इसके साथ ही शोध के दूसरे शोध उपकरण के रूप में रोर्शाक स्याही धब्बा परीक्षण व्यक्ति की चिंतन और कल्पनाशक्ति को मापने का रोचक परीक्षण है। इससे प्राप्त तथ्यों से व्यक्तित्व की कमजोरियों, मजबूती एवं विकृतियों को समझने में आसानी होती है।

उक्त परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का शोधार्थी द्वारा सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया, जिसके फलस्वरूप शोध निष्कर्ष के रूप में यह तथ्य सामने आया कि हाथों के प्रयोग का व्यक्तित्व के लक्षणों और मनोविकृति विज्ञान के अंतर्गत आने वाले व्यक्तित्व के पहलुओं से सीधा संबंध है।

हाथों का उपयोग व्यक्तित्व की क्षमताओं व समस्याओं को प्रभावित करता है। दाएँ, बाएँ अथवा दोनों हाथों का प्रयोग करने वालों के व्यक्तित्व के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी एवं समझ उनके हाथों के उपयोग के आधार पर प्राप्त की जा सकती हैं।

इस शोध अध्ययन में तथ्यों के विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह देखा गया कि दाएँ हाथ वाले बाएँ एवं मिश्रित की तुलना में अधिक बहिर्मुखी होते हैं, मिश्रित अर्थात दोनों हाथों के प्रयोग वालों में चेतनता का स्तर अन्य दोनों—बाएँ एवं दाएँ की तुलना में कम होता है। बाएँ हाथ वालों में सहमितता, सहकारिता का स्तर दाएँ व मिश्रित की तुलना में कम होता है।

इसी तरह मनोविक्षुब्धता का स्तर दाएँ हाथ वालों की तुलना में बाएँ एवं मिश्रित हाथ का उपयोग करने वालों में ज्यादा पाया गया है। बौद्धिक क्षमता का स्तर मिश्रित हाथ वालों में अन्य दोनों की तुलना में उच्च पाया जाता है, लेकिन भावनात्मक परिपक्वता दाएँ हाथ वालों में उच्च देखी गई है।

इसी तरह शोध में यह भी पाया गया कि हाथों के उपयोग के अंतर का संबंध व्यक्तित्व में उत्पन्न होने वाली मनोविकृतियों से भी होता है। जैसे बाएँ हाथ वालों में भावनात्मक अपरिपक्वता, आत्महीनता, कमजोर समायोजन, चिंता, संदेह, उग्रता आदि लक्षण मिलते हैं। इसी तरह मिश्रित हाथ वालों में भी समस्याएँ पाई जाती हैं, परंतु बाएँ एवं मिश्रित हाथ वाले में दाएँ की तुलना में उक्त विकृतियों की रोक-थाम एवं उपचार को ज्यादा प्रभावी देखा गया है।

यह शोध अध्ययन दरसाता है कि किसी व्यक्ति के दाएँ हाथ अथवा बाएँ हाथ अथवा दोनों हाथों का प्रयोग यों ही संयोग या आदत मात्र नहीं होती है अपितु इसके पीछे एक गहरा विज्ञान समाहित है। जैविक और मानसिक संरचना के माध्यम से यह बचपन से ही निर्धारित हो जाता है कि कौन किस हाथ का प्रयोग करेगा और उससे संबंधित व्यक्तित्व की क्षमताएँ और विकृतियाँ उसमें दिखाई देंगी।

इस शोध का अर्थ यह निकलता है कि प्रथम तो हमें बाएँ हाथ अथवा अन्य हाथ के उपयोग करने के तरीकों से संबंधित भ्रांतियाँ व धारणाओं से उबरना चाहिए और ऐसे मामलों में लोगों को जाग्रत करना चाहिए। दूसरा किसी के भी बाएँ हाथ होने अथवा मिश्रित हाथ होने पर एक सामान्य बात मानकर किसी तरह की आत्महीनता या दुराग्रहों से मुक्त रहना चाहिए। इस दृष्टि से यह एक मूल्यवान शोध है। ❑

**युग निर्माण योजना कोई अखबारी प्रोपेगंडा नहीं है, वह इस युग की ऐसी सच्चाई है, जिसका मूल्यांकन किया ही जाएगा और वह वर्तमान की अति सफल और ज्ञात महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों में एक मानी जाएगी। इतना विशाल संगठन, इतना बड़ा युग निर्माण परिवार और उसके द्वारा संचालित बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रांति का महाअभियान अपने आप में अनोखा, अनुपम और अद्‌भुत माना जाएगा।**

***—परमपूज्य गुरुदेव***

# भारतीय-दर्शन की मूल अवधारणा

भारत में दर्शन की परंपरा पश्चिमी दर्शन से सर्वथा भिन्न रही है। पश्चिम में इसका पर्याय फिलॉसफी शब्द है, जो फिलॉस एवं सोफिया शब्दों से मिलकर बना हुआ है, जिसका अर्थ है—ज्ञान से प्रेम। इस तरह पश्चिम में दर्शन का उद्भव जिज्ञासा एवं उत्सुकता के भाव से होता है और तर्क के साथ आगे बढ़ता है। इसमें विश्व जीवन की समस्याओं पर विचार होता है, जो एक स्तर तक समाधान की स्थिति में पहुँचा देता है।

ज्ञान की यह अवस्था द्वैत की होती है, इसके आगे नहीं बढ़ पाती, लेकिन भारत में उसकी शुरुआत जिज्ञासा मात्र से अधिक जीवन-पहेली के समाधान की दृष्टि से हुई, जिसके पीछे मुमुक्षुत्व एवं दुःख से आत्यांतिक निवृत्ति का भाव था। यहाँ दर्शन का उद्देश्य महज ज्ञान की प्राप्ति नहीं, बल्कि ज्ञान की अनुभूति है, जिससे जीवन की समस्याओं का पूर्ण समाधान प्राप्त हो सके। यह बुद्धि से अधिक अंतर्प्रज्ञा (इंट्यूशन) पर आधारित है।

प्रो0 मैक्स मूलर के शब्दों में, भारत में दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया गया था। दर्शन शब्द दृश् धातु से बना है, जिसका अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाए। इस तरह भारत में दर्शन वह विधा रही है, जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार हो सके। यहाँ दर्शन मात्र तत्त्व की व्याख्या से संतुष्ट नहीं होता, बल्कि वह तत्त्व की अनुभूति भी करना चाहता है। इस तरह यहाँ दर्शन आध्यात्मिक समाधान की ओर ले जाता है, जो अपनी चरम परिणति में अद्वैत की अवस्था का सूचक होता है।

इसके विपरीत पश्चिमी दर्शन बौद्धिक है, जहाँ सभी दार्शनिकों का मानना रहा है कि बुद्धि के द्वारा वास्तविक और सत्य ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। सुकरात, प्लेटो, डेकार्ट, स्पिनोजा, हेगल जैसे सभी दार्शनिकों ने बुद्धि की महत्ता पर जोर दिया; जबकि भारतीय दर्शन को हम अध्यात्मवाद के रंग में रँगा पाते हैं।

यहाँ दार्शनिक—सत्य की सैद्धांतिक विवेचना भर से संतुष्ट नहीं होता, बल्कि वह सत्य की अनुभूति पर बल देता है। इस तरह पश्चिमी दर्शन विश्लेषणात्मक है, जिसमें तत्त्व ज्ञान, सौंदर्य विज्ञान, प्रमाण विज्ञान की व्याख्या की गई है। भारतीय दर्शन में इन पर एक साथ विचार किया गया है। यहाँ पर संश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। पश्चिमी दर्शन इहलोक की सत्ता पर ही विश्वास करता है; जबकि भारतीय दर्शन परलोक में भी विश्वास करता है, जहाँ मृत्यु के उपरांत भी अस्तित्व पर विचार होता है।

भारतीय दर्शन एवं पश्चिमी दर्शन में एक मौलिक अंतर है। पश्चिम में दर्शन को साध्य माना जाता है; जबकि भारत में इसे साधन मात्र माना गया है। आध्यात्मिक अनुभूति बौद्धिक ज्ञान से उच्च है। बौद्धिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय के बीच द्वैत का भाव रहता है; जबकि आध्यात्मिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता। साथ ही भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषता उसका व्यावहारिक स्वरूप है, जिसका प्रादुर्भाव जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए हुआ। पाश्चात्य दर्शन की भाँति भारतीय दर्शन का आरंभ आश्चर्य एवं उत्सुकता से अधिक जीवन के दुःख के शमन एवं निराकरण के लिए हुआ।

इस क्रम में जीवन में दुःखों के कारण की खोज हुई तथा इनके आत्यांतिक उपचार पर तात्त्विक विचार हुआ, जिसके अंतर्गत ज्ञान की चर्चा ज्ञान के लिए न होकर मोक्षानुभूति के लिए हुई। मोक्ष का अर्थ ऐसी अवस्था से है, जहाँ दुःखों का सर्वथा अभाव होता है।

मोक्ष को परम लक्ष्य मानने के कारण भारतीय दर्शन को मोक्ष दर्शन भी कहा जाता है। इसके केंद्र में आत्मतत्त्व का होना इसके आध्यात्मिक स्वरूप को इंगित करता है, जिस कारण इसे कभी-कभी आत्मविद्या भी कहा जाता है। परमपूज्य गुरुदेव ने अध्यात्म के वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक स्वरूप को सर्वसुलभ करते हुए इसे युग दर्शन के रूप में प्रतिष्ठापित किया है, जिसमें जीवन के तात्त्विक चिंतन के साथ जीवन-साधना के रूप में इसका सर्वांगीण स्वरूप स्पष्ट होता है। ❑

# बुढ़ापे की तैयारी

बुढ़ापा जीवन का एक ऐसा सत्य है, जिससे देर-सबेर सबका वास्ता पढ़ता है। जीवन की महायात्रा में यह एक अहम पड़ाव है। यदि उचित तैयारी के साथ इसका सामना किया जाए तो इससे बढ़कर तृप्ति, तुष्टि एवं शांति देने वाला जीवन का दूसरा कोई दौर नहीं हो सकता और यदि इसकी पूरी तैयारी न हो पाई तथा बेहोशी में इससे पूर्व जवानी और प्रौढ़ावस्था का बहुमूल्य समय बरबाद करते रहे तो फिर बुढ़ापा कंटकाकीर्ण हो जाता है। बुढ़ापे के नाम पर प्राय: तन से जर्जर, मन से टूटे, हताश एवं पराश्रित व्यक्तियों का चित्रण किया जाता है, लेकिन यदि बुढ़ापे को मानसिक उत्साह, आशा एवं सृजन के आधार पर आँका जाए तो आयु से इसका अधिक लेना-देना नहीं है।

एक ओर जहाँ 20-30 वर्ष की आयु के तथाकथित युवा को भी जीवन में हताशा, निराशा एवं भय-असुरक्षा से ग्रसित देखा जा सकता है तो वहीं 70-80 वर्ष व इससे भी अधिक आयु में कितनों को जीवन में आशा, उत्साह एवं उल्लास के साथ जीवन का आनंद लेते देखा जा सकता है।

ऐसे उदाहरणों से इतिहास के पन्ने भरे हुए हैं। तुलसीदास जी ने 80 वर्ष की आयु में रामचरितमानस की रचना प्रारंभ की थी। इस युग में स्वामी कल्याणदेव जी 128 वर्ष की आयु में भी समाजसेवा में गंभीर रूप से सक्रिय रहे।

महात्मा गांधी, पं0 मदनमोहन मालवीय, श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, श्री जमनालाल बजाज जैसे मनस्वी वृद्धावस्था के ऐसे आदर्श रहे, जो अंतिम समय तक जीवट के साथ लोकहित के कार्यों में संलग्न रहे। हालाँकि आज के संदर्भ में शारीरिक लक्षणों के आधार पर 60-65 वर्ष के बाद बुढ़ापे की शुरुआत मानी जा सकती है, जब इंद्रियाँ शिथिल पड़ना शुरू हो जाती हैं।

इस उम्र तक आते-आते काया में झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। दाँत झड़ने शुरू हो जाते हैं। कानों से सुनना कम हो जाता है। स्मरणशक्ति का लोप होने लगता है। पाचन से लेकर शरीर की अन्य क्रियाएँ मंद पड़ने लगती हैं। बहुत अधिक शारीरिक-मानसिक श्रम की क्षमता भी नहीं रहती।

इस अवस्था में कई तरह के रोगों का संक्रमण आसानी से होने लगता है। हालाँकि यह बहुत कुछ इस पर भी निर्भर करता है कि व्यक्ति ने अपने बचपन, युवावस्था एवं प्रौढ़ावस्था का किस तरह से उपयोग या दुरुपयोग किया है। यदि इस दौर में असंयमित एवं मनमाने ढंग से जीवनयापन होता रहा तो फिर बुढ़ापे में खामियाजा कई गुना बढ़ जाता है। ऐसे में बुढ़ापे की प्रक्रिया कम आयु में भी प्रारंभ हो सकती है और आगे चलकर बहुत कष्टप्रद हो जाती है।

ऐसे में व्यक्ति शारीरिक रोगों के साथ एकाकीपन के भाव से आक्रांत हो सकता है। अपनों से बढ़ी-चढ़ी एवं अधूरी अपेक्षाएँ एवं उपेक्षा का द्वंद्व तब मानसिक चिंता एवं तनाव का कारण बन सकता है और अपनी संतानों से ही उपेक्षा, अपमान से लेकर प्रताड़ना का भी व्यवहार कई अभागों को झेलना पड़ता है। हालाँकि इसके लिए व्यक्ति स्वयं भी काफी हद तक जिम्मेदार होता है; क्योंकि जीवन में बहुत कुछ अपने ही पूर्वकर्मों से लेकर पापकृत्यों के परिपाक के रूप में फलित होता है, जिसका समय रहते उपचार एवं प्रतिकार किया जा सकता था। इसी आधार पर बुढ़ापा जीवन का वरदान बन सकता था।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में—वृद्धावस्था जीवन की एक ऐसी अवस्था है, जिसमें व्यक्ति अपने जीवन की समस्त व्यस्तताओं से अवकाश प्राप्त कर लेता है और जिन उपयोगी कार्यों को व्यस्तता के कारण वह कल पर टालता चला आ रहा था, उनमें उतरकर वह जीवन का अनदेखा आनंद उठा सकता है। वस्तुत: वृद्धावस्था जीवन का वह किनारा है, जहाँ व्यक्ति समस्त संघर्षों को पार कर एवं जीवन के तूफानों से गुजर कर किनारे पहुँचता है और स्वयं को अधिक शांत, अधिक सुखी तथा समाज के लिए अधिक उपयोगी बना सकता है।

इसके साथ यह भी सच है कि जब इस किनारे पर व्यक्ति जितना व्यग्र, चिंतित और निराश होकर उतरता है तो लगता है कि जीवन को बिताने में, इस किनारे पर उतरने से

पहले कोई त्रुटि रह गई और वे इस किनारे पर उतरना नहीं चाहते, लगता है कि जबरन ही उतारे जा रहे हैं। इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि बुढ़ापे के लिए पूरी तैयारी के साथ जीवन के इस स्वर्णकाल का वह लाभ और आनंद उठाया जाए, जो पिछले समूचे जीवन में कभी नहीं मिल सका।

वास्तव में मानव जीवन पुरुषार्थ एवं प्रायश्चित के लिए मिला है, जो अन्य किसी भी योनि में संभव नहीं। पुरुषार्थ के द्वारा हम सदैव सत्कर्म करें, सद्विचारों एवं सद्गुणों का प्रचार-प्रसार करें तथा समाज में सर्वत्र सत्प्रवृत्तियों का विकास करने में अपना योगदान करें। किसी भी जन्म में हमने किसी भी जीव के प्रति किसी भी प्रकार का पाप-अत्याचार किया हो, उसके प्रायश्चितस्वरूप इस जीवन में सभी जीवों के प्रति दया का भाव रखें और हर प्रकार से उनकी सेवा करें। अपने अनुभवों से सबका मार्गदर्शन करें। अपनी प्रतिभा-क्षमता का लाभ सभी को लेने दें।

जो व्यक्ति अपने जीवन को इस प्रकार प्रायश्चित एवं पुरुषार्थ के मार्ग पर चलाते हैं, वृद्धावस्था में उनके लिए किसी भी प्रकार की समस्या नहीं आती। यह तो परमात्मा की कृपा है कि उसने दीर्घायु के रूप में अपने सत्कर्मों की सुगंध फैलाने का एक अवसर हमको दिया है। इस रूप में वृद्धावस्था जीवन का नवनीत है, जिसे अभिशाप मान बैठना हमारी नासमझी ही है।

यदि किसी कारणवश ऐसा नहीं हो पाया तो युवावस्था में इसकी तैयारी शुरू करें और यदि इससे भी चूक गए हैं तो प्रौढ़ावस्था में इसके लिए सचेष्ट हो जाएँ। मानकर चलें कि जो समय बीत गया, वो बीत गया। अभी जो समय शेष है, उसमें अपने कर्म और चिंतन को सही दिशा देते हुए शेष जीवन को सुख और संतोष के साथ हम सभी व्यतीत कर सकते हैं। वास्तव में बुढ़ापे का शेष जीवन शांतिपूर्ण आत्मचिंतन तथा भगवद्भजन करने के लिए होता है, कामनाओं की पूर्ति हेतु भाग-दौड़ करने के लिए नहीं।

भारतीय परंपरा में आश्रम-व्यवस्था इसीलिए निर्धारित की गई थी, जिसमें ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थाश्रम के बाद फिर वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम का क्रम आता था। यही वह समय होता है, जब मनुष्य अपने परलोकप्रासाद की नींव रखता है, किंतु यह तभी संभव होता है; जब मनुष्य पहले से ही इसकी तैयारी करके जीवन के अंतिम चरण में प्रवेश करे, जवानी में अथक परिश्रम करते हुए अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों को पूरा करे। इसके लिए अपनी संतानों को वह इस योग्य बनाए कि वे उस दायित्व को ठीक से सँभाल सकें। अपने लिए स्थायी परिस्थितियों का निर्माण करे, जो आगे चलकर उसकी सच्ची सहयोगी बन सकें।

संयम, नियम तथा कठोर व्रतपालन द्वारा इतनी शक्ति, इतना तप-तेज संचय करे, जो अंतिम क्षण तक उसे अशांत न होने दे। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि यदि बचपन और जवानी में कोई चूक हो गई हो तो हताश-निराश न हो। अभी भी समय है और दृढ़ निश्चय के साथ विपरीत परिस्थितियों को उलटकर सीधा किया जा सकता है। इसके लिए सर्वप्रथम अपने जीवन की समीक्षा करे। देखे कि गलती कहाँ हुई है और इसके सुधार का ईमानदारीपूर्वक प्रयास करे।

यह भी जरूरी है कि हम अपनी आवश्यकताओं को कम करें और परिस्थितियों से तालमेल बैठाएँ। घर-परिवार एवं पड़ोस में जैसा भी अच्छा-बुरा वातावरण मिला है, उसमें प्रसन्न रहने की आदत डालें। यदि परिवेश प्रतिकूल है तो मानकर चलें कि कमल को तो कीचड़ में ही रहना पड़ता है, इसमें दुःखी होने से क्या लाभ? ईश्वरीय इच्छा मानकर हम हर हाल में मस्त रहें। अनावश्यक मोह त्यागकर अपनी क्षमता-योग्यता का समाजहित में सर्वश्रेष्ठ नियोजन करें। इसे परिपूर्णता देने के लिए आध्यात्मिकता को अपनाएँ। अंतर्मुखी होकर आत्मचिंतन, मनन, ध्यान एवं भजन में निमग्न रहें।

जीवन के महान उद्देश्य पर विचार करते हुए उसे सार्थक-साकार करने के लिए हर पल संलग्न रहें और दूसरों का भी पथ प्रदर्शन करें। इस तरह आत्मसंतुष्ट एवं लोकोपयोगी जीवन जीते हुए मृत्यु के महोत्सव की तैयारी करें। मृत्यु तो अवश्यंभावी है। हर व्यक्ति की आयु निश्चित है, मृत्यु की घड़ी को टाला नहीं जा सकता। कोई भी देहधारी अमर नहीं है। अमर तो केवल आत्मा ही है। इस आत्मतत्त्व का सतत चिंतन-मनन करते हुए, भगवद्भजन करते हुए संचित कर्मों को नष्ट करते रहें तथा पुण्यकर्मों में निरंतर वृद्धि करते हुए जीवन की महायात्रा की तैयारी करें। ❑

युगगीता —257

# जीवन को नरक बना लेते हैं आसुरी वृत्ति के लोग

*(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की पंद्रहवीं किस्त)*

**[ श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक पर चर्चा इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। उस श्लोक में श्रीभगवान आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों के लक्षणों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य कहते हैं कि वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया है और अब शेष शत्रुओं को भी हम मार ही डालेंगे। हम ईश्वर के समान सर्वसमर्थ हैं। हम भोगों को भोगने वाले हैं। हम सिद्ध हैं। हम बड़े बलवान और सुखी हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि यह भाषा आसुरी वृत्ति वाले अहंकारी व्यक्तियों की भाषा है। ऐसे व्यक्ति कामी व क्रोधी होते हैं। ईश्वर में तथा प्रकृति के कर्मफल विधान में उनका जरा-सा भी भरोसा नहीं होता। स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्तियों के भीतर दो तरह के मिथ्या विश्वास पनपते हैं। एक तो वे स्वयं को ही ईश्वर समझने लग जाते हैं, जैसे हिरण्यकशिपु स्वयं को ही नारायण समझने लग गया था। दूसरा उनको हर व्यक्ति अपना शत्रु लगने लगता है; क्योंकि उनकी कामनाएँ अपरिमित होती हैं और जो भी उनकी कामना के पथ में बाधा बनकर खड़ा होता है, वह उन्हें अपना विरोधी ही नजर आता है। इसलिए वे अहंकार से उन्मत्त होकर स्वयं को सर्वसमर्थ, सिद्ध, बलवान समझने लगते हैं; जबकि सत्य इसके बिलकुल विपरीत होता है।**

**भगवान श्रीकृष्ण यहाँ पर यह भी कहते हैं कि ऐसी प्रवृत्ति के लोग स्वयं को सुखी समझते हैं अर्थात वे सुखी होते नहीं, पर स्वयं को वैसा समझने लगते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसी वृत्ति वाले मनुष्य सदा ये ही सोचते रहते हैं कि वह शत्रु मेरे द्वारा मार डाला गया है और दूसरे अन्य शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा। ऐसा इसलिए; क्योंकि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों को दूसरों को नष्ट करने की बड़ी तीव्र लालसा होती है; क्योंकि उन्हें सभी अपने प्रतिस्पर्धी, सभी अपने दुश्मन नजर आते हैं। आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य इसी तरह की भ्रांति, इसी तरह के भ्रम में अपना जीवन एवं दूसरों का जीवन नष्ट करते दिखाई पड़ते हैं। ]**

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

**आढ्योऽभिजनवानस्मि**
**कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।**
**यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य**
**इत्यज्ञानविमोहिताः ॥15॥**
**अनेकचित्तविभ्रान्ता**
**मोहजालसमावृताः।**
**प्रसक्ताः कामभोगेषु**
**पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥16॥**

**शब्दविग्रह**—आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया, यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः ॥15॥ अनेकचित्तविभ्रान्ताः, मोहजालसमावृताः, प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ ॥16॥

**शब्दार्थ**—बड़ा धनी और ( **आढ्यः** ), बड़े कुटुंबवाला ( **अभिजनवान्** ), हूँ। ( **अस्मि** ), मेरे ( **मया** ), समान ( **सदृशः** ), दूसरा ( **अन्यः** ), कौन ( **कः** ), है? (मैं) ( **अस्ति** ), यज्ञ करूँगा, ( **यक्ष्ये** ), दान दूँगा (और) ( **दास्यामि** ), आमोद-प्रमोद करूँगा ( **मोदिष्ये** ), इस प्रकार ( **इति** ), अज्ञान से मोहित रहने वाले (तथा) ( **अज्ञानविमोहिताः** ), अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले ( **अनेकचित्तविभ्रान्ताः** ), मोहरूप जाल से समावृत (और) ( **मोहजालसमावृताः** ), विषय भोगों में ( **कामभोगेषु** ), अत्यंत आसक्त (असुर लोग) ( **प्रसक्ताः** ), महान

अपवित्र (**अशुचौ**), नरक में (**नरके**), गिरते हैं (**पतन्ति**)।

अर्थात मैं धनवान हूँ, बहुत से मनुष्य मेरे पास हैं, मेरे समान दूसरा कौन है, हम खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे और आमोद करेंगे। इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहने वाले तथा तरह-तरह के भ्रमित चित्त वाले, मोह के जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए तथा पदार्थों और भोगों के अत्यंत आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं। अहंकार की भाषा, आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की भाषा है।

विगत सूत्र में ही श्रीभगवान बता रहे थे कि वे स्वयं को सर्वसमर्थ, सिद्ध, बलवान तथा सुखी मानते हैं। ऐसे मनुष्यों को ही यह अभिमान भी हो जाता है कि धनबल तथा जनबल में उनके समकक्ष कोई और नहीं है। वे यह सोचने लगते हैं कि उनके धन का, उनके अनुयायियों का, उनके सहयोगियों का कोई अंत नहीं और उनकी एक आवाज पर अनेक लोग उनके पीछे चलने को तैयार होंगे। रावण से लेकर सिकंदर, दुर्योधन से लेकर तैमूरलंग को भी इसी तरह का ही अहंकार तथा अभिमान हुआ करता था कि वे ही सर्वेसर्वा हैं।

ऐसे लोगों को यह लगने लगता है कि शुभ कर्म करने के लिए अपने आप को बदलने की या अपना परिष्कार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बस, यज्ञ करने व दान देने से ही उनकी जिम्मेदारी पूर्ण हो जाएगी। फिर यज्ञ करना एवं दान देना भी उनके लिए व्यक्तित्व परिष्कार का मार्ग न बनकर, अहंकार की पूर्ति का माध्यम बन जाते हैं। उन्हें यह लगने लगता है कि हमने यज्ञ कर लिया, दान दे दिया अब तो हमारी मौज-ही-मौज है; क्योंकि हम पृथ्वीपर्यंत लोकों में भी अब सुख ही भोगने वाले हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसा इसलिए होता है; क्योंकि उनका चित्त अहंकार से, अज्ञान से आवृत्त रहता है और इसलिए अशुद्ध चित्त के कारण वे मोह-माया के ऐसे पाश में बँधते हैं, जो उन्हें अंधकारमय नरकों तक ले जाकर छोड़ता है। देखा जाए तो आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य की जो चेतना है, वो विध्वंसक है। वो ईश्वर को नहीं मानता, प्रकृति के कर्म विधान को भी नहीं मानता, परंतु यज्ञ करने और दान देने के दंभ को भी नहीं छोड़ना चाहता है।

ऐसा इसलिए; क्योंकि उसकी चेतना मात्र कपट करना, अहंकार करना, आडंबर करना जानती है। इसीलिए वो सुखी होता नहीं, परंतु सुखी होने का आडंबर करने लग जाता है। अपनी दीनता को छिपाकर, अपने व्यक्तित्व की हीनता को छिपाकर स्वयं को ऐश्वर्यवान, शक्तिशाली, भोगों को भोगने वाला समझने लग जाता है। फिर ऐसा करते हुए उसे कहीं लगता है, कहीं उसकी अंतरात्मा उसे कचोटती है कि वो कुपथ पर है तो वह कहने लगता है, सोचने लगता है कि मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा; ऐसा इसलिए, ताकि वह अपने मन को, अपनी अंतरात्मा को धोखा दे सके कि मैं बुरा आदमी नहीं हूँ।

सारी दुनिया के सामने वह ये आडंबर करना चाहता है कि मैं तो बड़ा धर्मात्मा हूँ, सत्पथ पर चलता हूँ, यज्ञ-दान करता हूँ; जबकि उसकी प्रवृत्ति व चेतना तो विकृत एवं विध्वंसकारी होते हैं। जो लोग बुरे पथ पर चलते हैं, वे इसी तरह के कुतर्कों से अपनी अंतरात्मा को चुप कराने की कोशिश करते हैं। चोरी करने जाता व्यक्ति स्वयं को समझाता है कि मैं चोरी नहीं कर रहा हूँ, मैं तो अमीरों को मिला धन लेकर गरीबों को बाँट दूँगा। इस तरह वो स्वयं को यह प्रमाणित करने की कोशिश करता है कि जो वह कर रहा है, वो तो बड़ा ही धार्मिक कृत्य है।

आज के युग की समस्या ही यह है। आज जो अधर्म करते हैं, वे भी धर्म का नाम लेकर के ही करते हैं। आज जो अनीति करते हैं, वे भी नीति की ही दुहाई देते हैं। इसीलिए धार्मिकस्थलों पर अधर्म घटता, विद्या के मंदिरों में उपद्रव होता और नीति-नियंताओं द्वारा अनैतिक कृत्य होता दिखाई पड़ता है। श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी प्रवृत्ति वाला व्यक्ति करता सब गलत है, पर मन में यह ही मानकर बैठता है कि वो बिलकुल सही है; क्योंकि उसका चित्त, अज्ञान व अहंकार से ढका हुआ होने के कारण प्रवंचना शुरू कर देता है। धीरे-धीरे उसको सच का पता चलना भी बंद हो जाता है।

ऐसे मनुष्यों के बारे में श्रीभगवान कहते हैं कि वे नरक में जाकर गिरते हैं। दूसरे शब्दों में उनका जीवन ही नरक सदृश हो जाता है; क्योंकि उनके भीतर प्रतिपल एक दुःख, विषाद, पीड़ा, अकेलेपन की आग जलती रहती है। वो ये भूल जाते हैं कि ये उन्हीं के कर्म हैं, जो पलटकर उन्हें मिल रहे हैं।

ये उनकी अपनी आवाज की ही प्रतिध्वनि है, जो लौटकर उनके पास आ रही है। चित्त की जब ऐसी दशा बन जाती है तो व्यक्ति धीरे-धीरे जीवन को नरक बना लेता है। ऐसा ही आसुरी प्रवृत्ति के लोग अपने जीवन के साथ करते हैं। (क्रमशः)

# ऐंटीबायोटिक दवाइयों का इतिहास

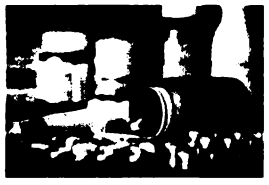

ऐंटीबायोटिक दवाओं की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता है। तमाम बीमारियों का रामबाण इलाज आज भी इन्हीं दवाओं से संभव हो पा रहा है। 75 साल पहले इन दवाओं का उत्पादन शुरू हुआ था। प्लेग जैसी महामारी से इन्हीं दवाओं ने छुटकारा दिलाया था। सन् 1840 में यूरोप में ढाई करोड़ से भी ज्यादा लोग प्लेग की चपेट में आकर मरे थे, किंतु अब यह महामारी लगभग पूरी तरह खतम हो चुकी है। सच्चाई यह भी है कि अनेकों घातक बीमारियों पर नियंत्रण भी इन्हीं ऐंटीबायोटिक दवाओं से संभव हुआ है।

यह ठीक है कि कभी-कभी ये शरीर में एलर्जी व अन्य नई बीमारियों को पैदा करने का कारण बन जाती हैं। नीम-हकीम द्वारा रोग की ठीक से पहचान नहीं किए जाने के बावजूद ये दवाएँ रोगी को जरूरत से ज्यादा खिलाई जा रही हैं। इसलिए शरीर में जो जीवाणु एवं विषाणु मौजूद हैं, वे इन दवाओं के विरुद्ध अपना प्रतिरोधीतंत्र विकसित करने में सफल हो रहे हैं। परिणामस्वरूप ये दवाएँ कुछ रोगों पर बेअसर भी साबित हो रही हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी एक रिपोर्ट में ऐंटीबायोटिक दवाओं के विरुद्ध पैदा हो रही प्रतिरोधात्मक क्षमता को मानव स्वास्थ्य के लिए वैश्विक खतरे की संज्ञा दी है। इस रिपोर्ट से स्पष्ट हुआ है कि चिकित्सा विज्ञान के नए-नए आविष्कार और उपचार के अत्याधुनिक तरीके भी इनसान को खतरनाक बीमारियों से छुटकारा नहीं दिला पा रहे हैं। चिंता की बात यह है कि जिन महामारियों से दुनिया के समाप्त होने का दावा किया गया था, वे भी फिर से आक्रामक हो रही हैं।

मानव जीवन के लिए जिन हानिकारक सूक्ष्मजीवों को नष्ट करने की दवाएँ ईजाद की गई थीं, वे स्थायी तौर से रोगनाशक साबित नहीं हुई हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 114 देशों से जुटाए गए आँकड़ों का विश्लेषण करते हुए अपनी रिपोर्ट में कहा है कि यह प्रतिरोधक क्षमतां दुनिया के हर कोने में दिख रही है। रिपोर्ट में एक ऐसे उत्तरार्द्ध ऐंटीबायोटिक युग की आशंका जताई गई है, जिसमें लोगों के सामने फिर उन्हीं सामान्य संक्रमणों के कारण मौत का खतरा होगा; जिनका पिछले कई दशकों से इलाज संभव हो रहा है।

यह रिपोर्ट मलेरिया, निमोनिया, डायरिया और रक्त संक्रमण का कारण बनने वाले सात अलग-अलग जीवाणुओं पर केंद्रित है। रिपोर्ट के अनुसार—अध्ययन में शामिल आधे से ज्यादा लोगों पर दो प्रमुख ऐंटीबायोटिक का प्रभाव नहीं पड़ा। स्वाभाविक तौर पर जीवाणु धीरे-धीरे ऐंटीबायोटिक के विरुद्ध अपने अंदर प्रतिरक्षा क्षमता पैदा कर लेता है, परंतु इन दवाओं के हो रहे अंधाधुंध प्रयोग से यह स्थिति अनुमान से कहीं ज्यादा तेजी से भयावह हो रही है।

चिकित्सकों द्वारा इन दवाओं की सलाह देना और मरीज की ओर से दवा की पूरी मात्रा न लेना भी इसकी प्रमुख वजह है। प्रसिद्ध विशेषज्ञ डॉ0 फुकुदा का मानना है कि जब तक हम संक्रमण रोकने के बेहतर प्रबंधन के साथ ऐंटीबायोटिक के निर्माण, निर्धारण और प्रयोग की प्रक्रिया को नहीं बदलेंगे, यह खतरा बना ही रहेगा।

वैज्ञानिकों ने ऐंटीबायोटिक दवाओं की खोज करके महामारियों पर एक तरह से विजय पताका फहरा दी थी, लेकिन चिकित्सकों ने इन दवाओं का इतना ज्यादा प्रयोग किया कि बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों ने प्रतिरोधात्मक दवाओं के विपरीत ही प्रतिरोधात्मक क्षमता को हासिल कर लिया।

मानवीय काया में प्रत्येक सूक्ष्मजीव हानिकारक नहीं होते, कुछ पाचन-क्रिया के लिए लाभदायी भी होते हैं। प्राकृतिक रूप से हमारे शरीर में 200 किस्म के ऐसे सूक्ष्मजीव डेरा डाले हुए हैं, जो हमारे प्रतिरक्षातंत्र को मजबूत व शरीर को निरोगी बनाए रखने का काम करते हैं, लेकिन ज्यादा मात्रा में खाई जाने वाली ऐंटीबायोटिक दवाएँ इन्हें नष्ट करने का काम करती हैं।

ऐंटीबायोटिक दवाओं की खोज मनुष्य जाति के लिए ईश्वरीय वरदान साबित हुई थी; क्योंकि इनसे अनेक संक्रामक रोगों से छुटकारा मिलने की उम्मीद बँधी थी, परंतु जैसे ही संक्रामक रोगों से लड़ने के लिए ऐंटीबायोटिक दवाओं का इस्तेमाल शुरू हुआ तो वैज्ञानिकों ने पाया कि पुराने सूक्ष्मजीवों ने अपना रूपांतरण कर लिया है। पेनिसिलीन की खोज एक क्रांतिकारी खोज थी, किंतु वैज्ञानिकों ने देखा कि अब कुछ ऐसे सूक्ष्मजीव भी सामने आए हैं, जिन पर पेनिसिलीन भी बेअसर है।

सूक्ष्मजीवों को केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्र से ही देखा जा सकता है। जीवाणु और विषाणु सूक्ष्मजीवों के ही प्रकार हैं; जो किसी भी कोशिका में पहुँचकर शरीर को नुकसान पहुँचाना शुरू कर देते हैं। ये हमारी त्वचा, मुँह, नाक और कान के जरिए शरीर में प्रवेश करते हैं। फिर एक से दूसरे व्यक्ति में फैलने लगते हैं। इसीलिए अब चिकित्सक सलाह देने लगे हैं कि दो व्यक्तियों के बीच एक हाथ की दूरी बनी रहनी चाहिए। किसी का जूठा नहीं खाना-पीना चाहिए। वैसे हमारी त्वचा सूक्ष्मजीवों को रोकने का काम करती है और जो शरीर में घुस भी जाते हैं, उन्हें ऐंटीबायोटिक दवाएँ मार डालती हैं।

एक समय तक संक्रामक रोगों को फैलने में ऐंटीबायोटिक दवाओं ने अंकुश लगा रखा था। इससे पहले खासतौर से भारत समेत अन्य एशियाई देशों के अस्पताल संक्रामक रोगियों से भरे रहते थे और चिकित्सक मरीजों को बचा नहीं पाते थे। निमोनिया और डायरिया के रोगियों को भी बचाना मुश्किल था। चोट लगने पर टिटनेस और सेप्सिस की चपेट में आए मरीजों की मौत तो निश्चित थी।

सन् 1940 से 1980 के बीच बड़ी मात्रा में असरकारी ऐंटिबायटिकों की खोज हुई। नतीजतन स्वास्थ्य के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, परंतु सन् 1980 के बाद कोई बड़ी खोज नहीं हुई; जबकि पूरी दुनिया में इस दौरान चिकित्सा शिक्षा एक संस्थागत ढाँचे के रूप में ढल चुकी थी। आविष्कार में उपयोगी माने जाने वाले उपकरण भी शोध संस्थानों में अब आसानी से उपलब्ध हैं। सन् 1990 में एक नई किस्म की ऐंटीबायोटिक की खोज जरूर हुई, परंतु बाजार में जो भी नई दवाएँ आईं वे हकीकत में पुरानी दवाओं के ही नए स्वरूप थे।

विडंबना यह है कि नई ऐंटीबायोटिक दवाएँ विकसित नहीं हो रही हैं; जबकि ताकतवर नए-नए सूक्ष्मजीव सामने आ रहे हैं। इन सूक्ष्मजीवों ने मौजूदा दवाओं की सीमाएँ चिह्नित कर दी हैं। जाहिर है इस पृष्ठभूमि में संक्रामक रोगों का खतरा बढ़ रहा है। प्रकृति ने मनुष्य को बीमारियों से बचाव के लिए शरीर के भीतर ही मजबूत प्रतिरक्षात्मक तंत्र दिया है। इन्हें श्वेत एवं लाल रक्तकणिकाओं के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा रोगरोधी एंजाइम लाइपोजाइम होते हैं।

ऐंटीबायोटिक दवाओं ने जहाँ अनेक संक्रामक रोगों से मानव जाति को बचाया तो वहीं दुष्परिणामस्वरूप शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति को कमजोर भी किया। जिस तरह मानव शरीर विभिन्न प्राकृतिक तापमान, वायुमंडल व भौगोलिक परिस्थिति और पर्यावरण के अनुकूल अपने को ढाल लेता है, उसी तरह से हमारे धरती पर अस्तित्व के समय से ही सूक्ष्मजीव और उनके विरुद्ध शरीर की प्राकृतिक प्रतिरोधात्मक शक्ति का भी निरंतर विकास होता रहा है। ऐंटीबायोटिक दवाओं ने दोनों के बीच संतुलन को गड़बड़ा दिया, इसलिए ऐंटीबायोटिक दवाएँ जब-जब सूक्ष्मजीवों पर मारक साबित हुईं, तब-तब जीवाणु और विषाणुओं ने अपने को और ज्यादा शक्तिशाली बना लिया।

अत: महाजीवाणु कभी न नष्ट होने वाले रक्तबीजों की श्रेणी में आ गए हैं। इसलिए आज वैज्ञानिकों को कहना पड़ रहा है कि ऐंटीबायोटिक दवाओं की मात्रा पर अंकुश लगाना चाहिए। उपयुक्त चिकित्सा, उचित मात्रा एवं परहेज द्वारा ही इन दवाओं का समुचित लाभ लिया जा सकता है। व्यक्ति निरोगी होगा, प्रकृति के साथ लय बिठा करके ही। वर्तमान में ऐंटीबायोटिक दवाओं का ठोस विकल्प भी उपलब्ध है। जीवनचक्र को सुव्यवस्थित करके दरद कम करने व इससे राहत पाने के वैकल्पिक तरीकों में सबसे कारगर यौगिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक उपचार, प्राकृतिक चिकित्सा, पंचकर्म चिकित्सा, एक्युप्रेशर, प्राणिक हीलिंग आदि हैं।

दवाओं के विकल्प के रूप में आयुर्वेदिक औषधियाँ और होम्योपैथी की दवाएँ बेहतर विकल्प प्रस्तुत करती हैं। ये औषधियाँ व दवाएँ रोग का देर से ही सही, लेकिन स्थायी समाधान देती हैं और हमें अपनी जीवनशैली, खान-पान में सुधार लाने के लिए भी प्रेरित-प्रोत्साहित भी करती हैं। जिनकी जीवनशैली सही है, वे इन दुष्प्रभावों से दूर रहते हैं, इसलिए स्वस्थ जीवनशैली ही एकमात्र संपूर्ण समाधान है। ❑

# जगत् का आधार माँ काली

भद्रकाली शब्द 'शुद्धतम् विज्ञानदात्री शक्ति' का प्रतीक है। अथर्ववेद के वाक्यों में कहा गया है कि भद्रकाली देवी 'योगदेवी' अर्थात पराशक्ति से अभिन्न हैं। इन देवी का स्मरण करने से उपासकों के शुद्धात्म-विज्ञान का विकास होता है और वे सर्वशक्तिसंपन्न हो जाते हैं। काली की मूर्ति शक्ति तत्त्व की पूर्ण अभिव्यक्ति है। इसमें सृष्टि और संहार का जो रहस्य छिपा हुआ है, उसको पूर्णत: व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

काली की मूर्ति, काली का ध्यान तथा कालिका की पूजा बहुत लोगों के देखने और सुनने में आती है। काली के ध्यानगम्य रूप और उसके तात्पर्य के विषय में किंचित कथन ध्यातव्य हैं। अरूप ही काली का प्रकृत रूप है। साधक साधना के पथ में अरूप का रूप निर्माण कर डालता है।

**अरूपं भावनागम्यं परं ब्रह्म कुलेश्वरि।**
**अरूपां रूपिणीं कृत्वा कर्मकाण्डरता नरा: ॥**

पुराणों एवं तंत्रशास्त्रों में साधारणतया दक्षिणा, भद्रा, गुह्य प्रभृति भेद से काली की अष्टमूर्तियों का उल्लेख मिलता है। इनमें दक्षिणाकाली हमारे देश में विशेष रूप से पूजित और आराधित होती आ रही हैं।

दश महाविद्या के अंदर भी काली का नाम ही सर्वप्रथम आता है। तंत्रशास्त्र काली का ही 'आद्याशक्ति महामाया' के नाम से कीर्तन करते हैं। काली ही विश्व की प्रसूति तथा जीव-जगत् की भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी हैं—इस बात का श्रद्धालु सतत विश्वास करते हैं। मार्कंडेय पुराण में कहा गया है कि देवी नित्य अर्थात उत्पत्ति-विनाश से रहित होने पर भी देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए रूप विशेष धारण करके धराधाम में अवतीर्ण होती हैं।

**देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।**
**उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥**

शुंभ नामक दैत्य के वध के समय महाशक्ति के शरीरकोश से एक शिवा विनिर्गत हुई थी एवं इसी कारण देवी कृष्णवर्ण होकर 'कालिका' नाम को प्राप्त हुई थीं।

**तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।**
**कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥**

काली के साथ काल का घनिष्ठ संबंध है। यह काल केवल काल नहीं हैं, वरन महाकाल हैं, जो सब पदार्थों का कलन या विनाश साधन करते हैं। वे ही काल हैं—**'कलनात् सर्वभूतानाम्'** इति। जिनके द्वारा द्रव्य का उपचय या अपचय संघटित होता है, उन्हें ही हम 'काल' कहते हैं।

काल नित्य और अखंड रूप से खड़ा रहता है। दिन-रात और घड़ियों का विभाग मनुष्य की कल्पनामात्र है। सूर्य की गति की सहायता से हम काल का विभाग करते हैं। कृत्रिम होते हुए भी यह विभाग हमारे सामने वास्तविक-सा प्रतीत होता है। काली संहार की मूर्ति हैं—इसी कारण इनके साथ सर्वोच्छेदकारी काल का संबंध है। कुछ देर तक स्थिर चित्त से काली की मूर्ति का दर्शन करने से दर्शक के हृदय में संहार की विभीषिका स्वयं ही उपस्थित होती है।

काली की करालमूर्ति तथा काल की रुद्रमूर्ति, दोनों ही महाप्रलय की सूचक हैं। जिसे 'काल' कहा जाता है, वह महाशक्ति के राज्य में 'शक्ति विशेष' के अतिरिक्त कुछ नहीं है। विश्व के समस्त पदार्थ शक्ति के ही उद्भूत रूप हैं। शक्ति मात्र से ही सबकी उत्पत्ति होती है—**शक्तिमात्रा समूहस्य विश्वस्यानेक धर्मण:**। शक्ति ही जगत् का चरम उपादान हैं। संहार का भैरवी रूप ही काल का रूप है। काल के कराल कटार में जीव-जगत् निरंतर ही निष्पेषित हो रहा है। कालगर्भ से सारे भूत पदार्थों की उत्पत्ति होती है तथा कालगर्भ में ही सबका लय हो जाता है।

जो काल के ऊपर प्रतिष्ठित हैं अर्थात जो कालशक्ति के अधीन और नित्यसिद्धा महाशक्ति हैं—वे ही काली हैं। जो काल जगत् का आधार है, उसका भी आश्रय काली हैं। काल में ही सब पदार्थों की उत्पत्ति, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपचय और नाश होता है। काल के विशाल उदर में ही सब वस्तुओं का परिपाक होता है। अद्वैत दृष्टि से देखने पर कालशक्ति परब्रह्म या पराशक्ति से अभिन्न है।

मनुष्य के समस्त ज्ञान-विज्ञान काल विशेष द्वारा नियमित हैं। काली तत्त्व दुर्ज्ञेय है। काल का दूसरा नाम रुद्र सदाशिव है। काली की मूर्ति में जो संहार की कराल विभीषिका वर्तमान है, उसे देखने पर श्मशान, शव, शिवा, जलती हुई चिता, नरमुंड, रुधिर आदि सारे भयप्रद पदार्थ कालिका के ध्यान में देखे जा सकते हैं। यह है प्रलय की भैरवी मूर्ति, ध्वंस का भीषण चित्र। देवी की मूर्ति प्रलयकालीन मेघमाला के समान भयंकर कृष्णवर्णा है। उनके मुक्त केशपाश, लोल रसना तथा विकट रव, सभी आतंककारी हैं।

नृमुंडगलित रुधिर धारा से उनका सर्वांग परिप्लुत है। एक तो विकराल मूर्ति, उस पर भी दिगंबरी। ऐसी मूर्ति को देखकर क्या किसी के चित्त में भय नहीं हो सकता है। ऐसी जगदीश्वरी का नाम 'श्मशानालयवासिनी' है, जो सार्थक है। इन कृष्णवर्णा काली में एक ही साथ भीति और प्रीति मूर्ति सर्वदा प्रकाशमान हैं। संहार की विभीषिका से आनंद की अभिव्यक्ति बड़ी ही मनोरम होती है।

काली में विनाश और कारुण्य एक साथ मिले हुए हैं। जगदंबा सदैव ही जीवों के दुःख से कातर रहती हैं। संतान का दुःख-कष्ट दूर कर उन्हें अपनी शांतिमय गोद में लेने के लिए वे सदा ही हाथ पसारे रहती हैं—

**दारिद्र्य दुःखभयहारिणि का त्वदन्या।**
**सर्वोपकार करणाय सदार्द्रचित्ता॥**

इन महाकाली की उपासना भारत में अति प्राचीनकाल से होती आ रही है। धर्मप्राण हिंदू कभी अचेतन वृक्ष, पत्थर की या मिट्टी की प्रतिमा की पूजा नहीं करते। वे यथोक्त विद्यानुसार प्राण-प्रतिष्ठा करके मृण्मयी प्रतिमा को सचेतन करने का कौशल जानते हैं। भक्त की अभीष्ट पूर्ति के लिए जगदीश्वरी मूर्ति में आकर आविर्भूत होती हैं।

आइए आज हम सभी उपासक उन काली, कराली, मनोजवामूर्ति की अर्चना कर अपने अभीष्ट की पूर्ति करें। ❑

**यथार्थ और आदर्श, दोनों में विवाद उठ खड़ा हुआ। यथार्थ ने कहा—मैं बड़ा हूँ और आदर्श कहता था मैं। विवाद तय न हुआ। यथार्थ और आदर्श, दोनों प्रजापति ब्रह्मा के समीप गए और कहा—"भगवन्! आपने ही हमें पैदा किया है, अब निर्णय दें, हम दोनों में बड़ा कौन है?" प्रजापति थोड़ा गंभीर होकर सोचने लगे, फिर मुस्कराकर बोले—"बड़ा तो वही हो सकता है, जो आकाश और पृथ्वी दोनों में संबंध जोड़ दे।" यथार्थ ने अपना विस्तार करना प्रारंभ किया। पृथ्वी से ऊपर उठता ही गया, उठता ही गया, किंतु वह सूर्य को नहीं छू सका। उसने हार मान ली और आदर्श से बोला—"अच्छा! अब आप यह करके दिखावें।" आदर्श आकाश को चला गया और वहीं से अपने पैर बढ़ाकर धरती को छूने का प्रयत्न करने लगा, पर बीच में ही लटककर रह गया। दोनों ने सिर झुकाकर प्रजापति के सामने अपनी-अपनी हार स्वीकार की। ब्रह्मा जी ने दोनों को समझाते हुए कहा—"जाओ अब थोड़ा मिलकर प्रयत्न करो।" यथार्थ और आदर्श भाई-भाई की तरह मिले और दोनों ने पृथ्वी-आकाश को जोड़ दिया। प्रजापति बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"वत्स! तुम्हारा बड़प्पन परस्पर प्रतिद्वंद्वी बनने में नहीं, सहयोगी बनने में है।" जिसने जितने अंशों में यथार्थ और आदर्श का समन्वय किया, वही अपने स्तर से उच्चतम स्थिति तक बढ़ सकता है।**

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 1

# ज्ञान और पराक्रम का पथ अध्यात्म

(पूर्वार्द्ध)

**भारत की इस भूमि से ज्ञान और विज्ञान की दो महत्त्वपूर्ण परंपराओं ने जन्म लिया है। वो धारा, जो हमें संसार और पदार्थ का ज्ञान कराती है, विज्ञान कहलाती है और वो धारा, जो हमें जीवन के उद्देश्य से परिचित कराती है, आत्मज्ञान की धारा कहलाती है, अध्यात्म कहलाती है। अध्यात्म के इस पथ को परमपूज्य गुरुदेव अपने इस प्रस्तुत उद्बोधन में ज्ञान और पराक्रम का पथ कह करके पुकारते हैं। वे कहते हैं कि अध्यात्म के पथ के पथिक की जिम्मेदारी मात्र ज्ञानार्जन के साथ समाप्त नहीं हो जाती अपितु उसको अपने व्यक्तित्व के भीतर विराजमान दुर्गुणों को दूर करने के लिए एक विशिष्ट पराक्रम भी दिखाना पड़ता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....**

**गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—**

*ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥*

## ज्ञान और पराक्रम की परंपरा

देवियो, भाइयो! संसार में आध्यात्मिक बल और भौतिक बल—ये दो प्रमुख शक्तियाँ हैं। इनमें समन्वय और संतुलन बना रहे, तभी सुख-शांति और समृद्धि कायम रहती है। अगर हम ज्ञानवान हैं, तो हमें पराक्रमी भी होना चाहिए। पराक्रम और आध्यात्मिक ज्ञान की परंपरा को हम जब अपने चारों ओर देखते हैं तो पाते हैं कि यह परंपरा लंबे समय से चली आ रही है।

हमने देखा है कि एक हाथ में माला और एक हाथ में भाला की नसीहत देने वाले कितनी बार, कितने संत आए। उन्होंने हमें माला हाथ में थमाई और हमसे कहा—"जब तक बने एक हाथ में माला और एक हाथ में भाला लेकर चलिए। ज्ञान और पराक्रम की परंपरा भारत की धर्म और संस्कृति का प्राण है। इन दोनों को मिलाए बिना हम जिंदा नहीं रह सकते। दोनों को मिलाकर ही सफल हो सकेंगे।

मित्रो! बगीचे में बीज बोया जाता है तो उसकी रखवाली भी करनी चाहिए। रखवाली नहीं करेंगे तो चिड़ियाँ आपका दाना खा जाएँगी। आपका परिश्रम बेकार चला जाएगा। रखवाली का भी इंतजाम कीजिए। पानी का भी इंतजाम कीजिए। नहीं साहब! हमने तो बगीचे में पानी का ही इंतजाम किया है। बेटा! अच्छा किया है, पर यह तो बता कि तुमने निराई-गुड़ाई का इंतजाम किया कि नहीं? निराई की क्या आवश्यकता है? बेटे! पौधों के पास खर-पतवार उग आएँगे और सारे खाद-पानी को खा जाएँगे। पौधों को उगने-बढ़ने भी नहीं देंगे।

कभी जाकर देखता है कि नहीं देखता! नहीं साहब! जाता तो नहीं हूँ। तब तेरा बगीचा नहीं बन सकता। रखवाली का इंतजाम किया? नहीं साहब! रखवाली का तो इंतजाम नहीं किया है। तो मैं बताए देता हूँ कि जब फल आएँगे तो उन पर चिड़ियाँ आएँगी, कौए आएँगे, तोते आएँगे और सूअर आएँगे, सियार आएँगे, नीलगाय आएँगी और तेरे सारे खेत को, बगीचे को नष्ट कर देंगे। कुछ भी नहीं बचेगा। तेरा बीज, खाद-पानी सब-का-सब बेकार चला जाएगा। पहले चिड़ियों से रखवाली का प्रबंध करना चाहिए।

## आध्यात्मिक तेज विकसित करें

मित्रो! हमारे भीतर एक और माद्दा होना चाहिए, जिसका नाम है—तेज। तेज अगर हमारे और आपके भीतर

नहीं है तो बेटे! कुछ बात बनेगी नहीं। तेज का इस्तेमाल करना पड़ेगा। हाँ, इस्तेमाल तो करना ही पड़ेगा। आपने एक कहानी सुनी होगी। कौन-सी वाली कहानी? जिसमें एक साँप था और स्वामी जी ने उससे कहा कि किसी को काटना मत। लोगों ने उसे सताना और पिटाई करना शुरू कर दिया।

फिर महाराज जी आए, तो साँप ने कहा—आपने गलत शिक्षा दे दी। तो महाराज जी ने कहा—काट मत, पर फुफकारना जारी रख। जब साँप फुफकारने लगा, तब लोग डरकर भाग गए। ऐसा नहीं है कि दया करना अच्छा नहीं है। दया के बिना कोई जिंदा नहीं रह सकता। दया और क्षमा की शक्ति है तो महत्त्वपूर्ण, लेकिन कब है, जब उसके साथ-साथ में तेज जुड़ा हुआ हो।

मित्रो! ब्रह्मतेज हमेशा से हमारी भारतीय संस्कृति की परंपरा रही है और उससे आगे भविष्य में कभी भी धर्म का जीवन जिया जाए, अध्यात्म को जिया जाए, शालीनता को जिया जाए तो मनुष्य की विषमताएँ जिएँगी, तो सबको मिलाकर जिएँगी। एक नहीं जी सकती। न एक अकेला क्रोध जिएगा, न एक अकेला तेज जिएगा। दोनों को मिला करके हमको इस तरीके से चलना पड़ेगा, जैसे शृंगात्मक स्थिति। ये बेटे प्राचीनतम हैं। नहीं साहब! वे हथियार नहीं चलाते थे। हथियार नहीं चलाते थे, तो उनके पास आध्यात्मिक हथियार थे।

कौन से हथियार थे? शृंगी ऋषि के पिता लोमश ऋषि को राजा परीक्षित ने अपमानित किया। गले में मरा हुआ साँप डाल दिया। बाल शृंगी ऋषि को पता चला कि हमारे पिता का अपमान किया गया है। शृंगी ऋषि ने हाथ में पानी लेकर के कहा—"मरा हुआ साँप जिंदा हो जाए।" साँप जिंदा हो गया तो कहा—"चल, जिसने हमारे पिता का अपमान किया, उसे काट खा।" राजा परीक्षित ने सारे-के-सारे इंतजाम कर लिए कि साँप से बच सकें, पर साँप ने खा लिया। क्यों साहब! हथियार तो नहीं चलाया था। बेटे! हथियार नहीं, आदमी की अंत:तेजस्विता से यह सब संभव है।

मित्रो! व्याघ्र की कहानी आपने सुनी होगी। दमयंती ने आँखों से देखा था और देखने मात्र से व्याघ्र खाक हो गया था। ऐसा भी हो सकता है? हाँ बेटे, ऐसा हो सकता है। हथियार की बात है तो हथियार बंदूक भी हो सकती है, चाकू भी हो सकता है, लाठी भी हो सकती है और गाली भी हो सकती है। वशीकरण दृष्टि भी हो सकती है। कौन-सा हथियार चलाया जाए और कब चलाया जाए, यह तो मैं नहीं कहता, पर मैं यह कहता हूँ कि हमारे पास मूल सिद्धांत के साथ आध्यात्मिक तेजस्विता का समावेश होना चाहिए। आध्यात्मिक तेज का संग्रह हमें रोज करना पड़ेगा।

हमारे पीछे ऐसे चोर पड़े हैं, जो हमें जिंदा नहीं रहने देंगे। बेटे! हमारे भीतर जो चोर बैठे हैं, वे पिटाई के बिना काबू में नहीं आ सकते। कौन-कौन से हैं ये चोर? एक का नाम है—काम, एक का नाम है—क्रोध, एक का नाम है—लोभ, एक का नाम है—मोह, एक का नाम है—मद और

**आयुषः क्षण एकोऽपि**
**न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।**
**स चेन्निरर्थकं नीतः का**
**नु हानिस्ततोऽधिका॥**

*अर्थात जीवन बड़ी अमूल्य वस्तु है। इसका एक क्षण भी करोड़ों स्वर्णमुद्राएँ देने पर नहीं मिल सकता। ऐसा जीवन निरर्थक नष्ट हो जाए तो इससे बड़ी हानि क्या हो सकती है?*

एक का नाम है—मत्सर। ये ऐसे गुप्त हैं कि हमें आगे बढ़ने ही नहीं देते। जब भी हम आगे बढ़ने की बात सोचते हैं, तो हमारी टाँगों को ऐसे घसीटते हैं, जैसे गज और ग्राह। गज और ग्राह की कहानी आपने सुनी है कि कैसे ग्राह गज को खींचता था। उसकी टाँग घसीटता था।

## षड्रिपुओं से कैसे बचें?

लेकिन मित्रो! हमारी तो छह टाँगें पकड़ रखी हैं। दो टाँगें, अगले दो हाथ, एक नाक, एक मुँह, सब पकड़कर रखा है। हम तो मरने के कगार पर हैं। छह दुश्मन पीछे पड़े हैं। महाराज जी! इस ग्राह से कैसे छुटकारा मिलेगा। ऐसे ही छूटेगा, जैसे कि पहले छूटा था। ग्राह से बचाने के लिए विष्णु भगवान आए थे। हमारा विष्णु भगवान, हमारा जीवात्मा

सुदर्शन लेकर आएगा और चैलेंज देगा और कहेगा कि ठहर जा, मैं अभी तुम्हारा सर्वनाश करता हूँ, तुम हावी होते चले जा रहे हो।

एक घटना स्वामी विवेकानंद के जीवन से जुड़ी हुई है। स्वामी विवेकानंद बनारस की विश्वनाथ गली में जा रहे थे। बहुत सारे बंदर आ गए और उनका कुरता फाड़ दिया। वे भागे। एक आदमी उधर से निकला, उसने कहा—"ठहर जाओ, भागो मत, खड़े हो जाओ। ये जो बंदर आ रहे हैं, इनके सामने आपके पास जो कुछ भी है—लाठी, डंडा, लोटा, घूँसा जो कुछ है, उसको लेकर के डटकर खड़े हो जाओ।" उनके पास कुछ भी नहीं था, पर दृढ़ता से खड़े हो गए। बंदर आए और घुड़की देने लगे। उनके पास कोई हथियार तो नहीं था, पर दृढ़ता से खड़े रहने पर बंदर भाग गए। उस व्यक्ति ने कहा—"आइंदा कभी आएँ तो ऐसे ही मुकाबला करना।"

मित्रो! ये बंदर हमारा कुरता फाड़ रहे हैं। हमारे स्वभाव के ऊपर हावी हो रहे हैं और हम भाग रहे हैं। कुछ ऐसा कीजिए, जिससे हमारी वासना दूर हो जाए। ये सब हमारे काबू से बाहर हो रहे हैं। यदि काबू में होता, तो मैं आपसे न नहीं कहता। हाँ! कुछ उपाय बता सकता हूँ। एक डंडा लेकर खड़े हो जाओ और अपना शौर्य, अपना पराक्रम—इनके माध्यम से इन्हें निकाल बाहर करो। अच्छा तुम हम पर हावी होना चाहते हो, निकलो बाहर। फिर देखना, यह वासनारूपी बंदर कैसे भागते हैं दुम दबाकर और आपको पता ही नहीं चलेगा।

एक भाईसाहब थे। वे बहुत हुक्का पीते थे, इतना कि रात को भी उठ करके चिलम भरते और हुक्का पीते। दिन में तो पीते ही थे। हमारे गाँव में यह रिवाज था कि जो उस बिरादरी का होगा, वह मुँह लगाकर चिलम पिएगा। दूसरी बिरादरी का चिलम नहीं पिएगा। उस जमाने में कुछ ऐसा रिवाज था। एक बार कोई आदमी आया। वह खाँसता जाए और हुक्का पीता जाए। उसका कफ निराली नली में भर गया और भाईसाहब ने जब उस हुक्के को पिया, तो वह कफ उनके मुँह में भर गया। उन्होंने कहा—"अरे! यह कफ कहाँ से आया? उनको गुस्सा आया और चिलम को ले जाकर के मारा पत्थर पर और हुक्का एक कोने में रखा रहा। उन्हें इतनी नफरत हुई कि हुक्का छूट गया।

## ओजस्, तेजस्, वर्चस् का पराक्रम

मित्रो! जो भी काम करना है, उसे सोच-समझकर करें। आइए मैं बताता हूँ कि कौन-सा शुक्र भड़कता है। कौन-सी कामवासना है। मैंने ठान लिया है कि इसकी कमर तोड़कर रख दूँगा, जरा आए तो मेरे पास। मित्रो! यह प्रचंड पराक्रम है, जिसको मैं कहता हूँ—तेजस्। ओजस्—जो हमारे शरीर में काम करता है, तेजस्—जो हमारे मस्तिष्क में काम करता है और ब्रह्मवर्चस्—जो हमारी आत्मा में काम करता है। वर्चस् हमारी आत्मा में काम करता है, तेजस् हमारे मस्तिष्क में काम करता है, ओजस् शरीर में काम करता है।

ओजस्, तेजस् और वर्चस्—ये तीन शक्तियाँ हैं। मित्रो! इनके बिना काम नहीं चल सकता। इसलिए मैं आपसे यह कहता हूँ कि भीतरी शत्रुओं का मुकाबला करने से लेकर के जो हमारी गलत आदतें आ गई हैं, उनसे भी मुकाबला करना है। अरे! हम तो ऐसा कर ही नहीं सकते। क्यों नहीं कर सकते? जल्दी सोओ, जल्दी उठो। नहीं महाराज जी! देरी से सोना हमारी आदत हो गई है।

आदत क्या होती है? धैर्य और पराक्रम से आपके आंतरिक जीवन में, बहिरंग जीवन में, आलस्य और प्रमाद जैसे दुश्मन भाग जाएँगे। भीतर के छह दुश्मन बताए हैं और बाहर के ये दुश्मन, इनसे आपकी सारी-की-सारी भौतिक उन्नति के दरवाजे बंद हो जाते हैं। तब आप भौतिक उन्नति नहीं कर पाएँगे। आपका भविष्य अंधकार में पड़ा रहेगा और आप किसी काम के नहीं हैं, जो भी काम हाथ में लेंगे, उठा-पटक कर देंगे।

मित्रो! दो दुश्मन आपके पीछे पड़े हैं, सी0बी0आई0 के कर्मचारी की तरह से, जो आपका एक भी काम सफल नहीं होने देंगे। आप जो भी काम करेंगे, रास्ते में रोककर खड़े हो जाएँगे। ये कौन हैं? दिशाशूल और योगिनी। जहाँ कहीं भी आप जाएँगे, ये दो साथ में जाएँगे। दिशाशूल कहाँ है—सामने और योगिनी—बाएँ। छींक आ गई और अब काम बिगड़ जाएगा। अरे! छींक हो गई और बिल्ली ने रास्ता काट दिया। अब नहीं जा रहे, अब तो काम नहीं बनेगा। तो काम करना बंद कर दें। ये कौन हैं? क्या मतलब है आपका? मेरा मतलब यह है कि छींक और बिल्ली, दिशाशूल और योगिनी—ये आपके पीछे पड़े हैं। ये हर काम असफल बना देंगे।

मित्रो! आलस्य—एक और प्रमाद—दो। ये दो ऐसे दुश्मन हैं, जो जीवन को पंगु बना देते हैं। आलस्य एक तरह का मानसिक लकवा है। लकवा कैसा होता है? शरीर में लकवा हो जाता है, तो हाथ ऐंठ जाते हैं, पैर काम करना कम कर देते हैं। क्या हो गया? लकवा हो गया। चलिए, अरे साहब! चलें क्या, लँगड़ाकर चलते हैं। यह क्या है? लकवा है। एक और भी लकवा होता है बेटे! जो दिखाई नहीं देता। उसका नाम है—आलस्य।

## आलस्य अर्थात मानसिक शिथिलता

आलस्य लकवा है, जो आदमी की हालत खराब कर देता है। अगर आदमी चाहे तो यही समय, जिसमें हम और आप रहते हैं। यही समय एक छोटी-सी जिंदगी, जो हमको और आपको मिली है। इसी में दुनिया के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने क्या-से-क्या कर डाला। जगद्गुरु शंकराचार्य बत्तीस वर्ष तक जिए। गजब कर गए, कमाल कर गए। स्वामी विवेकानंद गजब कर गए, कमाल कर गए। छोटी-सी जिंदगी में भी समय का ठीक से उपयोग करने वाले स्फूर्तिवान आदमी, परिश्रमी आदमी, पुरुषार्थी आदमी, काम करने वाले; जीवन सार्थक कर गए।

मित्रो! आपको तो लकवा हो गया है। इसका कुछ नहीं कर सकते; क्योंकि इसे लकवा हो गया है। नहीं साहब! लकवा कहाँ हुआ, हाथ-पाँव तो ठीक हैं। बेटे! परिश्रम कर। कुछ ऐसी बीमारी, जो दिखाई नहीं पड़ती। तेरे रोम-रोम में हावी हो गया है—आलस्य। आलस्य हमारी शारीरिक शक्ति को तबाह करके छोड़ेगा और सत्यानाश कर देगा। एक और भी चीज है। एक और भी दुश्मन है। उसका नाम है—प्रमाद।

जैसे शरीर का लकवा होता है, ऐसे ही दिमाग का एक लकवा होता है। आदमी को काम करना चाहिए, लेकिन अधूरे मन से, आधे मन से, काने मन से, कुबड़े मन से, देख रहा है कहीं, और चल रहा है कहीं। सोच रहा है कहीं, बोल रहा है कहीं कुछ। न कोई दिशा है, न धारा है। एक तरह की क्रिया हो जाए, क्रिया और विचार इस तरह मिल जाएँ, जैसे बिजली के निगेटिव और पॉजिटिव दोनों तार मिल जाते हैं, तो उनमें से करेंट निकलता है। चिनगारियाँ निकलती हैं। बिजली के बल्ब जल जाते हैं।

आदमी का चिंतन, आदमी की रुचि, आदमी की इच्छा और आदमी की क्रिया—इन सबको मिला दीजिए, तो गजब हो जाएगा। कमाल हो जाएगा। ऐसा बढ़िया काम होगा कि देखने वाले को तमाशा लगेगा और कहेगा कि कैसा बढ़िया काम हुआ है। कैसा शानदार काम हुआ है। किसने करके दिखाया है, उसके हाथ चूमने का मन करेगा।

मित्रो! आदमी ने तन्मय हो करके जो काम नहीं किया है, तो समाज हमको जिंदा मार डालेगा। तो क्या हमारा सुधार नहीं हो सकता। महाराज जी! शनि और राहु का प्रकोप है। शनि और राहु तेरा वह नुकसान नहीं करेंगे, जो चौबीस घंटे हमारे साथ रहने वाले शैतान कर रहे हैं। इनसे अपना पीछा छुड़ा ले। राहु से बचा देंगे और अपने शनिश्चर को भी मेरे ऊपर छोड़ दे।

**संपूर्ण जगत् को प्रकाश की आवश्यकता है। यह प्रकाश केवल भारत में ही है, इसीलिए ईश्वर ने इसको आज तक सभी प्रकार की विपदाओं से सुरक्षित बचाकर रखा है।**

**अब वह समय आ गया है। तुम सब कुछ हो, मेरे सिंह के समान बहादुरो! यह विश्वास करो कि तुम्हारा जन्म ही इस महान कार्य के लिए हुआ है। उन पिल्लों का भौंकना तुम्हें डरा न सके, नहीं कभी नहीं! यहाँ तक कि आकाश ही क्यों न गिर पड़े। खड़े हो जाओ और काम में लग जाओ।** ***—स्वामी विवेकानंद***

इनसे तो मैं निपट लूँगा। इनको मैं टेलीफोन करूँगा और कहूँगा कि भाईसाहब! आप हमारे इस परिजन को क्यों तंग कर रहे हैं? वह कहेंगे कि हम तो इन्हें नहीं जानते, हम क्यों कुछ करेंगे। इन्होंने हमारा क्या बिगाड़ा है, जो हम इन्हें तंग करेंगे। नहीं साहब! वो पंडित जी कह रहे थे कि शनिश्चर आ गया। अरे भाईसाहब! कोई और आ गया होगा। हमसे इनका क्या मतलब। हम तो इनसे कितनी दूर

रहते हैं। आपकी पृथ्वी के चक्कर काट लेते हैं और मस्त रहते हैं। हम किसी को क्या तंग करेंगे। हम तो प्रकृति के अनुकूल रहते हैं।

मित्रो! आप अपना काम कीजिए। अपना काम क्या करेंगे? ये जो समस्याएँ आपने अपने दिमाग में पैदा कर ली हैं कि अमुक हमें परेशान करता है, उसे निकाल दें। समस्या शब्द की व्याख्या मैं कर दूँ, तो समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। 'सम:सा'। इन दोनों को मिला करके समस्या बना है। समन् के आगे जो विसर्ग लगे हैं, संस्कृत के हिसाब से 'स' हो गया है। 'सम: सा'। आलसी आदमी और प्रमादी आदमी को क्या करना पड़ेगा? अपने आप से लोहा लेना पड़ेगा, भिड़ना पड़ेगा।

महाराज जी! बिना भिड़े काम नहीं चल सकता। नहीं, बिना भिड़े जिंदगी नहीं चल सकती। भिड़ने के लिए तैयार हो जाइए। झगड़ने वाली बात मुझे अच्छी नहीं लगती। मैंने गीता और रामायण पढ़ीं। गीता रामायण से अलग है। रामायण में भाई, भाई को सब कुछ देने के लिए तैयार है। अच्छा भाई तुम सब ले लो। गीता में जब अर्जुन यह कहने लगा था कि नहीं हम तो भीख माँगकर खा लेंगे, हमें कुछ नहीं चाहिए। तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था—

**क्लैब्यं मा स्म गम: पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।**
**क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥**

हे अर्जुन! नपुंसकता को मत प्राप्त हो। यह उचित नहीं है। अपने हृदय की क्षुद्रता को, दुर्बलता को त्याग करके युद्ध के लिए तैयार हो जा। श्रीकृष्ण ने गालियाँ सुनाईं, बहुत बुरा-भला कहा।

**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥**

भगवान श्रीकृष्ण ने ऐसी-ऐसी गालियाँ सुनाईं कि उसने गांडीव उठा लिया।

गीता आध्यात्मिक किताब है। ऐसा ज्ञान कहाँ प्राप्त होगा। हमारे जीवन के हर पहलू का ज्ञान है उसमें। कुछ लोग कहते हैं कि यह तो लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट सिखाती है। ऐसी है गीता। इससे मैंने यह समझा कि महाभारत को तो हजारों वर्ष हो गए। पुराने कहानी-किस्सों से क्या फायदा? आज तो लड़ाई हो नहीं रही है, फिर चिंता करने से हमें क्या फायदा है। फिर मैंने पीछे देखा कि गीता में आखिर नसीहत क्या है? और पहला वाला श्लोक जब मैंने पढ़ा तो मेरी आँखें खुल गईं। आ हा... यह मामला है। यह चक्कर है। इसमें—

**धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।**
**मामका: पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय॥**

धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में सेना एकत्र हुई है। धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र हमारा जीवन है। इसमें संघर्ष होता रहता है। समय पर यदि आपने अपने गांडीव को उठा लिया, तो हम हावी हो जाएँगे। तो क्या हम बच जाएँगे? नहीं बेटे! तब भी नहीं बचेंगे आप। पांडव भाग गए थे। कहाँ बचे। लाक्षागृह में जलाए गए। बेचारे कहाँ-कहाँ भागे फिरे। बेचारों को चैन थोड़े ही लेने दिया।

नहीं महाराज जी! हम भाग जाएँगे, तो चैन से रहेंगे। कहाँ भाग जाओगे। मैं तो गुफा में चला जाऊँगा। चला जा गुफा में, फिर देखना, न शांति मिलेगी, न मन लगेगा। तो फिर यहाँ आ जाऊँ शांतिकुंज में। बेटे! यहाँ वाले वैसे ही अशांत हैं। खटमल पैदा हो गए हैं, देख ले। शांति कहीं नहीं मिलेगी, बेटे! शांति तो आंतरिक है। अशांति पर विजय प्राप्त करने के बाद जो आनंद है, वह शांति है। संघर्ष करके जो विजय प्राप्त होती है, वह शांति है।

## आंतरिक महाभारत में विजयी बनें

मित्रो! शांति को प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना पड़ेगा? हमको सूर्य की उपासना करनी पड़ेगी। राम और लक्ष्मण की उपासना करनी पड़ेगी। ज्ञान और कर्म की उपासना करनी पड़ेगी। कृष्ण और अर्जुन की उपासना करनी पड़ेगी।

**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।**
**तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥**

इन दोनों की संगति में ही हमारे भीतर का महाभारत जीता जा सकता है। जीवन में महाभारत में इन दोनों योद्धाओं की समान आवश्यकता है। कृष्ण भगवान की हम उपासना करेंगे, तो अर्जुन को भी आना पड़ेगा। रामचंद्र जी के हम भक्त हैं, तो लक्ष्मण को नहीं भुला सकते। महायोद्धा अर्जुन को कैसे भुला सकते हैं। धनुर्धारी लक्ष्मण और धनुर्धारी अर्जुन को कैसे भुला सकते हैं। ये जो जड़ हैं, पेड़ हैं, इनको काट देंगे तो समस्या बढ़ेगी। यदि लक्ष्मण जी को हम हटा दें और रामचंद्र जी को रखें, तो रामायण अधूरी है। सारा-का-सारा क्रम गड़बड़ हो जाएगा। इसलिए हमको दोनों को ही लेकर चलना पड़ेगा। एक से काम नहीं चलेगा। चंद्रमा और सूर्य, दोनों को मिलाकर हमें चलना पड़ेगा। इसके बिना काम चलेगा नहीं।

मित्रो! ज्ञान भी हमको चाहिए और विज्ञान भी चाहिए। इन दोनों की उपासना का क्रम बहुत पुराने समय से चला आ रहा है, जिसे हम भूल गए। जिसने भौतिकता को ध्यान दिया, आध्यात्मिकता को भूल गया। आध्यात्मिकता का ध्यान किया तो भौतिकता को भूल जाना है। जिसने शक्ति की उपासना की, उसने ज्ञान को तिलांजलि दे दी। जिसने ज्ञान की उपासना की, उसने शक्ति की आवश्यकता नहीं समझी। इस अपूर्णता को हमें दूर करना है।

व्यक्ति के जीवन में, आध्यात्मिक जीवन में अपूर्णता दूर करनी है। क्यों साहब! पिछले जन्म में? नहीं बेटे! मेरा संपर्क नहीं है। मैं तो इस जीवन की बात कहता हूँ। मैं तो सामाजिक जीवन की बात कहता हूँ। हर क्षेत्र की बात कहता हूँ। विज्ञान से लेकर के ज्ञान तक, हर क्षेत्र की बात कहता हूँ। जीवन में दोनों शक्तियों का समन्वय आवश्यक है।

[क्रमशः अगले अंक में समापन]

**एक बूढ़ा आदमी बीमार पड़ा। उसके जीवन का अधिकतम समय लोभ की पूर्ति करने में बीता था। वह अत्यधिक लोलुप प्रकृति का था, इसलिए अपनी दवा पर भी ठीक से खरच नहीं होने देता था। आरोग्य हेतु आवश्यक पथ्य की पूर्ति न करने के फलस्वरूप शरीर में कमजोरी बढ़ती गई। बिस्तर पर पड़े अपनी अंतिम स्थिति में उसने देखा कि आँगन में बछड़ा झाड़ू चबा रहा है। यह देखकर उसका मन बड़ा दुःखी हुआ और सोचने लगा कि मेरी कमाई इस तरह बरबाद हो जा रही है।**

**उसने बोलने का प्रयास भी किया, पर कमजोरी में स्पष्ट शब्द नहीं निकल सके। पति को कुछ बुदबुदाते देख उसकी पत्नी ने समझा शायद भगवान का नाम ले रहे हैं। पुत्र ने अनुमान लगाया कि शायद अपनी गुप्त संपत्ति के बारे में अंत समय बतलाना चाहते हैं। चिकित्सक की व्यवस्था बनाई गई और यह भी निर्देशित किया गया कि कुछ भी खरच हो; ऐसा प्रयास करें कि इनके कुछ शब्द स्पष्ट सुनाई दे जाएँ। चिकित्सक ने कीमती दवाओं का प्रयोग कर जीवनरक्षा का भरसक प्रयास किया। चिकित्सा में खरच हुई दवाओं का मूल्य और चिकित्सक की फीस मिलाकर लाखों रुपये खरच हो गए। दवाओं ने मात्र इतना ही असर दिखाया कि उस वृद्ध की सारी शक्ति इकट्ठी कर दी। कुछ जोर लगाकर जब वृद्ध ने पुनः से बोलने की कोशिश की तो उसके मुख से वही निकला और सुनाई पड़ा—बछड़ा, झाड़ू, बछड़ा, झाड़ू—यही मंत्र दोहराते हुए उस वृद्ध के प्राण छूट गए। जो संस्कार जीवन भर हावी रहते हैं, वे अंत तक पीछा नहीं छोड़ते। इसलिए सद्गति हेतु आवश्यक है—ईश्वर का सतत सुमिरन।**

विश्वविद्यालय परिसर से—196

# नए कीर्तिमानों की रचता विश्वविद्यालय

भारत की भूमि देवताओं की, ऋषियों की, संतों की, तपस्वियों की, मनस्वियों की भूमि रही है और उस भूमि को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि यहाँ से मनुष्य को उसके जीवन का बोध कराने वाली ज्ञान की धाराओं की एक अनंत परंपरा ने अनादिकाल से जन्म लिया है।

इन परंपराओं में योग, तंत्र, सांख्य, वेदांत जैसी गंभीर और गुह्य ज्ञान की परंपराएँ भी हैं तो वहीं मनुष्य को धर्म-व्यवहार सिखाने वाली, शिष्टाचार सिखाने वाली, सदाचार विकसित करने वाली अनेकों सामाजिक परंपराएँ भी हैं।

इन ज्ञान-परंपराओं में संभवतया वो धारा जिसका उद्देश्य मनुष्य को मानवीय संभावनाओं के शिखर पर ले जाना है—वो धारा योग की धारा रही है। यह एक ऐसी अद्भुत ज्ञान की धारा है, जिसने सामान्य व्यक्ति को स्वस्थ शरीर को प्राप्त करना सिखाया तो वहीं उच्चतर आयाम के साधकों को स्वच्छ मन साधना भी सिखाया।

यही कारण था कि वर्षों पहले परमपूज्य गुरुदेव ने इसी योग की धारा को गायत्री परिवार के साधनात्मक अभियान के केंद्र में रखते हुए स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन, सभ्य समाज जैसे चिंतन को पूरे समाज को और पूरे विश्व को प्रदान किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय इस दृष्टि से सदा से अद्भुत रहा है कि इसने योग के क्षेत्र में एक ऐसे मुकाम को प्राप्त किया है, जहाँ पर विश्वविद्यालय के विद्यार्थी एवं आचार्यागण लोग इस क्षेत्र में राष्ट्रीय से लेकर अंतरराष्ट्रीय कीर्तिमानों को छूते हुए नजर आते हैं। इसीलिए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में योग का अध्ययन करना अनेक विद्यार्थियों के लिए गौरव का विषय रहता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में न केवल स्नातक, स्नातकोत्तर एवं पी-एच0डी0 स्तर के पाठ्यक्रम पढ़ाए जाते हैं अपितु योग के इस क्षेत्र में अनेकों विश्वस्तरीय शोधें भी विश्वविद्यालय के प्रांगण में संपन्न हो रही हैं।

यह भी एक गौरव का विषय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय से पी-एच0डी0 करने वाले विद्यार्थियों की संख्या और नेट एवं जेआरएफ जैसी उपलब्धियों को प्राप्त विद्यार्थियों की संख्या भी सर्वाधिक है।

इसके साथ-साथ ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय योगदान भारतवर्ष के नेतृत्व में योगदिवस की परंपरा की स्थापना करना रहा है। इसी क्रम में विगत दिनों अंतरराष्ट्रीय योगदिवस के केंद्रीकृत आयोजन को करने के लिए केंद्रीय मंत्री श्री किरेन रिजिजू की अध्यक्षता में एक महत्त्वपूर्ण मीटिंग का आयोजन किया गया जिसमें देव संस्कृति विश्वविद्यालय की ओर से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति को भी उनके विचारों को साझा करने के लिए आमंत्रित किया गया।

बैठक के दौरान देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति के साथ ही इस बैठक की प्रक्रिया आरंभ हुई और उस मीटिंग में प्रतिकुलपति जी ने कहा कि इस वर्ष योगदिवस का आयोजन एक अनूठे संयोग के अवसर पर हुआ है, जब अंतरराष्ट्रीय योगदिवस, गायत्री जयंती और गंगा दशहरा, सभी एक ही दिन आ रहे हैं और इस सौभाग्य का उस वर्ष में घटित होना, जो हम शांतिकुंज के स्वर्णजयंती वर्ष को मना रहे हैं, एक दैवी और विलक्षण संयोग ही कहा जाएगा।

इस गोष्ठी में उन्होंने केंद्रीय मंत्री जी एवं अन्य सभी प्रतिष्ठित आगंतुकों को शांतिकुंज आने का आमंत्रण दिया और साथ-ही-साथ यह भी कहा कि यदि योग मंत्रालय के प्रोटोकॉल में गायत्री मंत्र को एक स्थान दिया जा सकेगा तो उसके माध्यम से इस वर्ष हम लोग एक महत्त्वपूर्ण संदेश पूरे विश्व को दे पाने की स्थिति में होंगे; क्योंकि गायत्री मंत्र सही पूछा जाए तो पूरे विश्व की वैसी ही सांस्कृतिक धरोहर है, जैसा कि हम योग की परंपरा को मानते हैं।

इस तरह से वैश्विक संक्रमण की चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय योग के क्षेत्र में एक अभिनव परंपरा को स्थापित करता दिखाई पड़ा, जो सदा से उसकी स्थापना का आधार रहा है। ❑

अपनों से अपनी बात

# लोक-शिक्षण का केंद्र शांतिकुंज

लोक-शिक्षण, ऋषि परंपरा का प्रमुख अंग कहा जा सकता है। यदि ऋषि-मुनियों के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व का विहंगावलोकन करके उसका निष्कर्ष निकालने को कहा जाए तो सहजता से उसे एक शब्द में समाहित किया जा सकता है और वो है—लोक-शिक्षण। उनके समस्त प्रयासों का आधार एक ही था और उद्देश्य भी एक ही था कि उनके माध्यम से जनसामान्य को जीवन को सोद्देश्य जीने का संदेश मिल सके। देवात्मा हिमालय के तप:पूरित क्षेत्र में ऐसे एक नहीं अनेकों दैवी चेतनासंपन्न व्यक्तित्व सदा उपस्थित रहे, जिनकी अवतारी चेतना के अजस्र अनुदान लोक-शिक्षण के रूप में जनसामान्य को सदा मिलते रहे।

वर्तमान युग में इस जिम्मेदारी के निर्वहन का दायित्व परमपूज्य गुरुदेव ने अपने हाथों में लेते हुए कहा कि शांतिकुंज उस अजस्र प्राण-ऊर्जा का प्रतीक है, जो ऋषिगणों के उच्चतम लोकों से प्रवाहित होती है और शांतिकुंज के माध्यम से धरती पर उतरती है। यह चेतना ही फिर उन कार्यों को अंजाम देती देखी जाती है, जिसे पुकारने वाले लोक-शिक्षण, व्यक्ति निर्माण या प्रतिभा परिष्कार कहकर पुकारते रहे हैं।

यदि शांतिकुंज की प्रगति, प्रकाश, प्रामाणिकता का मूल्यांकन किया जाए तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शांतिकुंज अवतारी चेतना का मूर्तरूप है। इस आश्रम के संचालन का श्रेय भले ही मनुष्य देहधारी ले जाते हों, परंतु इसके पीछे प्रवाहित चेतना निश्चित रूप से दैवी, दिव्य एवं अलौकिक है।

जनसामान्य को गूढ़ अध्यात्म का शिक्षण कई माध्यमों से दिया जा सकता है और वे सभी, देखा जाए तो एकदूसरे को परिपूर्ण ही करते हैं। स्वाध्याय, सत्संग, साधना—ये सब मिलकर इन उद्देश्यों की पूर्ति करते नजर आते हैं। स्वाध्याय का कार्य जहाँ परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित अतुलनीय साहित्य के नित्य अध्ययन, चिंतन, मनन से पूर्ण हो जाता है तो वहीं सत्संग का तथा साधना का कार्य—शांतिकुंज में चलने वाले साधना सत्र कर देते हैं।

साथ ही समय-समय पर आयोजित की जाने वाली गोष्ठियाँ, किए जाने वाले विशेष सत्र एवं शिविर भी जीवन-साधना का लोक-शिक्षण अनवरत प्रदान करते रहते हैं। भाग लेने वाले शिविरार्थियों के भोजन, आवास की व्यवस्था नि:शुल्क होने के साथ ही अत्यंत सुविधाजनक भी है। स्पष्ट है कि नए युग के नवनिर्माण में ये सारी गतिविधियाँ एक उल्लेखनीय भूमिका निभाती नजर आती हैं। भले ही अभी Online चल रही हों।

इसके साथ ही शांतिकुंज में नित्यप्रति के यज्ञ, संस्कार की अतुलनीय व्यवस्था है। देश-विदेश से आने वाले सैकड़ों परिजन इन संस्कारयुक्त क्रियाकलापों में अहर्निश भागीदारी निबाहते हैं। यज्ञ का अर्थ मात्र कर्मकांड ही नहीं, बल्कि इसका सरोकार व्यक्तिगत जीवन में पुण्यार्जन एवं सामाजिक जीवन में परमार्थ करना है।

उद्देश्य यह ही है कि भाग लेने वाले मात्र दृश्य कर्मकांड को ही न करें, बल्कि अपनी श्रद्धा-भावना को परिमार्जित करते हुए, यज्ञीय जीवन का उद्घोष बनकर जनमानस की चेतना को आंदोलित भी करें। तब ही इस महत्त्वपूर्ण गतिविधि के पीछे निर्धारित पवित्र उद्देश्य के साथ न्याय हो सकेगा और आज तक ऐसा सदैव होता आया भी है।

इसी क्रम में परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज में सर्वप्रथम दीपयज्ञ की परंपरा की पुनर्स्थापना की, जिसमें आर्थिक दृष्टि से न्यूनतम संसाधन लगाने पड़ते हैं, पर यह चुंबक की तरह से प्रतिभावान व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करती नजर आती है। यज्ञ की वैदिक परंपरा का निर्वहन जहाँ मंत्रों के पावन उच्चारण से हो जाता है तो वहीं लोक-शिक्षण की व्यवस्था दीपयज्ञ में होने वाले उद्बोधन, प्रवचन करा देते हैं।

साथ ही इसे सायंकाल में रात्रि के प्रथम प्रहर में भी किया जा सकता है तो ऐसे भावनाशील लोग जो समयाभाव के कारण या नौकरी इत्यादि की व्यस्तताओं के कारण प्रात:काल के यज्ञ में सम्मिलित नहीं हो पाते, उनके लिए भी सायंकाल के दीपयज्ञ में भाग ले पाना सहजता से संभव हो पाता है।

इसके साथ ही परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने शांतिकुंज के माध्यम से ऐसे प्रशिक्षणों की व्यवस्था बनाई, ताकि व्यक्ति निर्माण एवं परिवार निर्माण के महत्त्वपूर्ण दायित्वों की पूर्ति सहजता से हो सके। 'गृह-गृह गायत्री, गृह-गृह यज्ञ' एवं 'आपके द्वार-पहुँचा हरिद्वार' इसी उद्देश्य के साथ चलाया गया एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम था। घर-घर में श्रद्धासिक्त, आस्था से अभिपूरित वातावरण बनाने में इस अभियान का सबसे ज्यादा योगदान रहा है। इस गतिविधि का लक्ष्य एक ही है कि व्यापक स्तर पर संस्कारवान व्यक्तियों को गढ़ने का कार्य सहजता से, न्यूनतम संसाधनों में संपन्न हो सके और अध्यात्मपरक वातावरण तेजी से बनता चले।

हर घर, हर परिवार में इस कार्य को करने के पीछे का उद्देश्य यह ही था कि उस परिवार की सर्वांगीण प्रगति के लिए तदनुरूप परिस्थितियों को निर्मित किया जा सके। यदि घर में संस्कारित वातावरण ही न हो तो फिर वैसे व्यक्तियों का निर्माण संभव कैसे हो सकेगा? परिवार, व्यक्ति एवं समाज के बीच की कड़ी है। यदि परिवार में व्यक्तित्व निर्माण के सूत्र घुल-मिल गए तो उसके दोनों सिरों, व्यक्ति एवं समाज का नवनिर्माण स्वतः ही होता चला जाएगा।

घर में होने वाले यज्ञ में उपस्थित प्रत्येक परिजन को एक दुष्प्रवृत्ति छोड़ने एवं एक सत्प्रवृत्ति अपनाने का संकल्प लेना जरूरी होता है। परिणामस्वरूप पतन की पराजय एवं उत्थान की सुनिश्चितता संभव हो पाती है। लोक-शिक्षण के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही इस महत्त्वपूर्ण कदम को विगत दिनों में उठाया गया है।

इसके अतिरिक्त बाल संस्कारशालाओं, भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा, स्वास्थ्य संवर्द्धन, कुरीति उन्मूलन जैसे न जाने कितने प्रकल्प, प्रयत्न यहाँ चलाए गए हैं, जो मिलकर लोक-शिक्षण के अनुरूप वातावरण स्वतः ही तैयार करते हैं। यहाँ के पीपीडी एवं ईएमडी विभागों द्वारा तैयार किए जा रहे कार्यक्रमों, चलाए जा रहे चैनलों के माध्यम से अनेक सुधीजन लोक-शिक्षण को घर बैठे ही प्राप्त कर लेते हैं और उसी के अनुरूप अपने जीवन जीने की रीति-नीति को सुधारने का प्रयत्न भी करते हैं।

लोक-शिक्षण के माध्यमों की बात की जा रही हो और परमपूज्य गुरुदेव द्वारा चलाए गए युगसंगीत के प्रभावी माध्यम को यदि हम भूल जाएँ तो यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा। गायन, अभिनय, सांस्कृतिक एवं रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से न केवल प्रतिभा परिष्कार की प्रक्रिया संपन्न होती है, वरन इसके माध्यम से लोक-शिक्षण का एक व्यापक आधार भी तय होता है। मोबाइल पर चलने वाली एप्लीकेशन के माध्यम से ये सभी कार्यक्रम लोक-शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाते नजर आते हैं। सारांश में यदि यह कहा जाए कि आज के युग में लोक-शिक्षण का मुख्यालय शांतिकुंज है तो यह सत्य ही होगा। ❑

**तपस्वी ध्रुव कच्ची उम्र में ही भगवान की तपस्या में निरत हो गए। उनकी निष्ठा को परखने के लिए देवर्षि नारद ने उनसे पूछा—"वत्स! संपूर्ण जीवन तपस्या में रत रहने पर भी यदि भगवान की प्राप्ति न हुई तो तुम क्या करोगे?"**

**ध्रुव ने उत्तर दिया—"देवर्षि! मेरे जीवन का उद्देश्य ही तपस्या है। यदि मुझे परमात्मा के दर्शन नहीं हुए तो मैं सोचूँगा कि यह जन्म इतने बड़े कार्य के लिए पर्याप्त नहीं था और मैं फिर से अगला जन्म लेकर तपस्या में निरत हो जाऊँगा।" ध्रुव के इतना कहते ही भगवान वहाँ प्रकट हो गए, तभी तो वे भक्तवत्सल कहलाते हैं।**

# शक्ति-साधना

देव वृत्तियाँ ही दुर्गा है, शुचिता से अपनाएँ हम।
अष्टभुजी दुर्गा का मतलब, आठों बल पा जाएँ हम॥

विद्या, चातुर्य, शरीर और धन, जीवन में बढ़ते जाएँ,
शस्त्र-शौर्य, मन-धर्म, निरंतर अपनी गरिमा पाएँ,
अस्त-व्यस्त कमजोर रहें न, अपनी शक्ति बढ़ाएँ हम।
अष्टभुजी दुर्गा का मतलब, आठों बल पा जाएँ हम॥

शौर्य शक्ति का पर्व दशहरा, शक्ति-साधना में लग जाएँ,
सामूहिक नियमित उपासना, श्रद्धा से करते ही जाएँ,
नवरात्र का पर्व आयोजन, मुदिता सहित मनाएँ हम।
अष्टभुजी दुर्गा का मतलब, आठों बल पा जाएँ हम॥

संधिकाल ऋतुओं का जग में, परिवर्तन ही लाता है,
परिवर्तन के क्षण हैं अनुपम, नवयुग दौड़ा आता है,
सामूहिक संकल्प साधना, से न तनिक घबराएँ हम।
अष्टभुजी दुर्गा का मतलब, आठों बल पा जाएँ हम॥

नव दिन का अनुष्ठान हमारा, कल्मष-कषाय धो देगा,
उज्ज्वल भविष्य के लिए शक्तियाँ, अंतर मन में भर देगा,
आएगी सुख-शांति धरा पर, मिलकर कदम बढाएँ हम।
अष्टभुजी दुर्गा का मतलब, आठों बल पा जाएँ हम॥

*—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'*

गायत्री परिवार यूथ ग्रुप (GPYG) कोलकाता एवं राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड (NSG) की क्षेत्रीय इकाई द्वारा
हुगली जिले में सरस्वती नदी के तट तथा एन.एस.जी. परिसर में लगभग 1100 पौधों का रोपण

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र.ति. 01-09-2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार के दिव्य वातावरण में गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूर भाष–0565-2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org